खण्ड V

विकास और अल्प विकास–II

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 17 वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला*

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 विषय–प्रवेश

17.2 वैश्विक आपूर्ति/श्रृंखला [GSC] : संकल्पनाएं एवं अभिलक्षण

17.2.1 प्रक्रियाएं/घटक

17.2.2 संमरण तन्त्र

17.2.3 वैश्विक आपूर्ति/श्रृंखला एवं संमरण तन्त्र : एक तुलना

17.2.4 अर्द्ध–सवाही [Semi-conductor]

17.3 वैश्विक आपूर्ति/श्रृंखला बनाम वैश्विक मूल्य वृद्धि श्रृंखला

17.4 आपूर्ति/ श्रृंखला व्यवधान और जोखिम प्रबंघन

17.5 भारत एवं वैश्विक आपूर्ति/ श्रृंखला : अवसर और चुनौतियाँ

17.6 सारांश

17.7 शब्दावली

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.9 बोध प्रश्नों के लिए उत्तर/संकेत

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कर पाएंगें

- वैश्विक आपूर्ति/श्रृंखला के विकास क्रमिक अभिलक्षणों की रूपरेखा की रचना द्वारा इस विषय की संकल्पना एवं स्वरूप की व्याख्या;
- वैश्विक आपूर्ति/श्रृंखला और संमरण तन्त्र की समानताओं और अन्तरों की तुलना;
- वैश्विक आपूर्ति/श्रृंखला में अर्द्ध–संवाहियों के एक अवरोध बिन्दु' के रूप में महत्त्व का स्पष्टीकरण;

*प्रो. एस.के. सिंह (सेवानिवृत्त), इग्नू

- वैश्विक आपूर्ति/एवं वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं में भेद का निरूपण करते हुए पिछले दशक में वैश्विक मूल्य श्रृंखला में आए बड़े बदलावों का स्पष्टीकरण;
- आपूर्ति/श्रृंखला व्यवधानों और जौखिम प्रबंधन पर एक टिप्पणी; तथा
- वैश्विक आपूर्ति/श्रृंखला के संदर्भ में भारत के समक्ष उपस्थित सुअवसरों और चुनौतियों पर एक चर्चा।

17.1 विषय प्रवेश

मानव सभ्यताओं के लिए आपूर्ति/श्रृंखलाएँ सदैव ही महत्वपूर्ण रही हैं। यदि हम आसपास दृष्टि दौड़ाएँ तो घर हो या कार्य स्थल, आपूर्ति/श्रृंखलाओं के अभाव में कुछ भी संभव नहीं हो पाता। विश्व भर में लाखों–करोड़ों रोजगार इन्हीं कार्यों से जुड़े हुए हैं। चाहे सस्ते उपभोक्ता पदार्थ हों या महंगे शल्यचिकित्सा उपकरण या फिर अत्यावश्यक सामग्रियाँ, सभी किसी न किसी आपूर्ति/श्रृंखला से ही हमें सुलभ हो पाती हैं।

आज की समेकित अर्थव्यवस्था में आपूर्ति श्रृंखलाओं से जुड़ी हुई मूल्य (वृद्धि) श्रृंखलाएँ एक बहुत महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर गई हैं। इसका कारण यही है कि अब अतंराष्ट्रीय स्तर पर उत्पादन प्रौद्योगिकीय प्रगति पर आधारित है और संसाधनों तथा बाजार तक उद्योगों की पहुँच हो पाने पर निर्भर है। आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन वह प्रकार्य है जो इन बातों की निगरानी और मार्गदर्शन करता हैः (i) उत्पादन (ii) परिवहन, तथा (iii) वस्तुओं एवं सेवाओं के उद्गम से लेकर अन्तिम उपयोग तक उनके पहुँचने की। गत तीन दशकों में बड़ी कंपनियों ने तटपारीय एवं बाह्य प्रापण गतिविधियों का विस्तार कर वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं की स्थापना कर ली है। इसके इन कारणों से उत्पादक एवं उपभोक्ता वर्गों को लाभ पहुँचे हैः (i) उच्चतर उत्पादिता, (ii) निम्न श्रम लागतें, तथा (iii) विदेशों में सुलभ दुर्लभ संसाधनों तक पहुँच। इस विकास से ये दोनों संभव हो पाए हैंः (i) उत्पादन प्रक्रिया की जटिलता में वृद्धि तथा (ii) आपूर्ति श्रृंखलाओं की परस्पर निर्भरता।

पिछले तीन वर्षों में वैश्विक आपूर्ति/श्रृंखलाओं में गंभीर अवरोधों के कारण अनेक समस्याएँ पैदा हुई हैं–ये है; उपभोक्ता की मांग में बदलाव, तटपारीय विश्वस्तता तथा परिवहन में चक्का जाम, गैरस्पर्धी व्यवहार और भू–राजनीतिक जटिलताएँ। यही नहीं, (i) बाह्य प्रापण, (ii) तटपारीय उत्पादन तथा (iii) लचीलेपन में अपर्याप्त निवेशों के कारण अनेक आपूर्ति श्रृंखलाएँ जटिलता एवं भंगुरता से ग्रस्त हो गई हैं। अपनी

जी–20 अध्यक्षता के दौरान भारत का लक्ष्य नीतिगत कार्यसूची को देशों को व्यापार गति में तीव्रता लाने में सहायता देने के लिए अधिक सुरक्षित एवं सबल वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के निर्माण पर केन्द्रित करना है। हम वर्तमान इकाई में इसके विकास क्रम, अर्थ, वितान, प्रक्रियाओं, चुनौतियों और संभावनाओं के माध्यम से वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के विभिन्न आयामों पर चर्चा करेंगे।

17.2 वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला (GSC): संकल्पनाएँ एवं अभिलक्षण

आपूर्ति श्रृंखला की संकल्पना का उदय एक व्यावसायिक प्रबंधन के परिप्रेक्ष्य से ही हुआ है। अनेक विद्वानों का विचार है कि इस शब्द–पद की रचना 1980 के दशक के आरंभ में संभारविद् की ऑलीवर ने की थी। आपूर्ति संरचना का आशय व्यवसाय के घटक कार्यों के एक श्रृंखला गत एवं संगठित स्वरूप में होने से है। यह किसी 'उत्पाद' की संपूर्ण जीवन यात्रा (अर्थात इसकी रचना से लेकर अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाने) की संकल्पना से जुड़ी सभी गतिविधियों को अपने आप में समाहित किए होती है। इसके लक्ष्य हैं: (i) जीवन यात्रा के प्रत्येक चरण पर उत्पादिता में वृद्धि, (ii) दक्षताहीनताओं का निर्मूलन और (iii) व्यवधान बिना उत्पाद को सामयिक रूप से उपलब्ध कराना। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के संदर्भ में चार 'कर्ता' निर्णायक माने जाते है: (i) आपूर्तिकर्ता, (ii) विनिर्माता, (iii) खुदरा विक्रेता और (iv) अन्तिम प्रयोक्ता। अतः वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के प्रमुख अभिलक्षण हैं कि इसमें:

(i) वस्तुओं के प्रापण, विनिर्माण तथा आपूर्ति के लिए एक सर्वव्यापक संरचना/रूपरेखा होती है;

(ii) आपूर्तिकर्ताओं, विनिर्माताओं, संमरण व्यवसायियों, थोक एवं खुदरा विक्रेताओं तथा अन्तिम प्रयोक्ताओं के बीच संपर्क एक सहयोग होते है;

(iii) किसी संगठन/निकाय को किसी उत्पाद या सेवा हेतु क्रयादेश प्राप्त होने पर प्रारंभ हुई गतिविधि से लेकर अन्तिम उपभोक्ता को सफलतापूर्वक उसकी वांछित वस्तु/सेवा की आपूर्ति के बीच किए गए। सभी क्रियाकलाप सम्मिलित है; और

(iv) साथ ही आदेश, वस्तु–भण्डार और आपूर्ति श्रृंखला के अन्य आयामो पर नियंत्रण भी शमिल होता है।

वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के स्वरूप में बहुत व्यापक बदलाव आए हैं। 1960 वे दशक मध्य में कंपनियों ने कम लागत के स्थानों पर ध्यान देते हुए अपनी आपूर्ति श्रृंखलाओं का विभाजन आरंभ कर दिया था। शुरू में उत्पादक द्वारा दिए गए कलपुर्जों को दूसरे देशों में सस्ती लागत पर जोड़ कर पूरी मशीन तैयार करा कर

ग्राहकों तक पहुँचाने को ही 'बाह्य–प्रापण' कहा गया था। ऐसे तट पारीय विनिर्माण के विकासक्रम के ये लक्षण रहेः

(i) 1970 और 1980 के दशकों 'उत्पादक चालित' "उपभोक्ता चालित" आपूर्ति श्रृंखलाओं की ओर रूझान हुआ।

(ii) इस बदलाव ने इन श्रृंखलाओं के स्वरूप को क्षेत्र–आधारित उत्पादन कार्य विभाजन से वास्तविक वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में बदल दिया। इसी समय पूर्वी एशिया न्यून लागत उत्पादनकर्ता क्षेत्र के रूप में महत्त्वपूर्ण रूप में उभर कर आया।

(iii) वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला की गति में और वृद्धि हुई और वे किसी उद्योग या कार्य से आगे बढ़कर पुर्जों तथा अर्द्धनिर्मित मशीनों आदि का रूप भी धारण करने लगी।

(iv) आपूर्ति श्रृंखला की वृद्धि की तीव्र रफ्तार ने विनिर्माण उद्योगों से आगे निकलकर ऊर्जा एवं खाद्य उत्पादों को भी अपने दायरे में समेट लिया।

(v) 1990 के दशक से अग्रणी बहुराष्ट्रीय कंपनियां वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं पर अधिकार किए बैठी हैं। अब इनके कार्य सभी प्रकार की सेवाओं तक फैल गए हैं–इनमें शमिल हैः फोन संपर्क केन्द्र (कॉल सैंटर) लेखा प्रकार्य, चिकित्सीय प्रक्रियाएं तथा मूलभूत शोध एवं विकास (R&D) गतिविधियां।

वैश्विक मूल्य वृद्धि श्रृंखलाओं के उदय और उनके मध्यवर्ती उत्पादों के व्यापार ने तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का स्वरूप ही बदल डाला है। अब कोई व्यवसाय आपूर्ति श्रृंखलाओं से जुड़े प्रश्नों से मुक्त नहीं बचा है। अब और अधिक मध्यवर्ती उत्पादों का तटपारीय लेन देन हो रहा है तथा निर्यात हेतु उत्पादों में प्रयोग के लिए और अधिक कलपुर्जों का आयात हो रहा है। इस घटना क्रम में "वस्तुओं के व्यापार" का स्थान "मूल्यवृद्धि व्यापार" तथा "प्रकार्य व्यापार" ने ले लिया है।

विनिर्माण कार्यों का घटक कार्यों में विभाजन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इस कार्य में वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला तन्त्र भी लगातार विकसित और संवर्धित हो रहे हैं। वर्तमान परिदृश्य में

(i) बहुराष्ट्रीय निगमों के लक्ष्य आदान प्राप्ति के दोहरे या बहुविध स्रोतों का विकास करना है, और

(ii) वे निकटवर्ती सहयोगियों की तलाश भी कर रहे हैं। "निकट तटीयता" और "सहयोगी तटीयता" का अर्थ होगाः

अन्तःक्षेत्रीय व्यापार तथा क्षेत्रीय गठबंधनों के आन्तरिक व्यापार में भारी वृद्धि। आज के समय में यही व्यवसाय जगत का मार्गदर्शक मंत्र बन गया है। वैश्विक आपूर्ति

श्रृंखलाएं इतनी जटिल हो चली हैं कि अब उनकी गतिविधियों का लेखाजोखा मशीनें ही रख पा रही हैं। इसी कारण अब उत्पादन वितरण और उपभोग कार्यों को भौगोलिक एवं प्रकार्यात्मक समेकीकरण पर बल दिया जा रहा है। इर्लेक्ट्रोनिक वाणिज्य (ई–कॉम) तथा इन्टरनेट ऑफद थिंग्स (IOT) ने तो आपूर्ति श्रृंखलाओं की संपूण प्रकृति को ही बदल डाला है। इन्होंने उपभोक्ता के जानकारी पाने, चयन, खरीदारी, वस्तुओं एवं सेवाओं के उपयोग करने आदि को पुनः परिभाषित कर दिया है। अब ऐसी व्यवसाय–से व्यवसाय आपूर्ति श्रृंखलाओं का उदय हो रहा है जो उत्पाद नहीं बल्कि उपभोक्ता केन्द्रित हैं। ये उपभोक्ता की ईच्छा के अनुरूप उत्पाद एवं सेवाएं भी सुलभ कराती हैं।

विकासशील विश्व में वृद्धिशील मांग तथा नवीन औद्योगिक क्षमताओं के प्रसार भी वैश्विक मूल्यवृद्धि श्रृंखलाओं की पुनः रचना कर रहे हैं। अब ई–कॉम क्षमता संपन्न व्यवसाय अपने ग्राहकों को और अधिक क्षमतावान (सशक्त) बना रहे हैं। अनेक कंपनियाँ अब परंपरागत व्यापार प्रतिमान जहां उत्पादक, आपूर्तिकर्ता, वितरक और विक्रेता किसी उत्पादिक वस्तु को बाजार में धकेलने का कार्य करते थे से हटकर उपभोक्ता द्वारा की जा रही नई मांगों को पूरा करने के प्रतिमान को अपना रही हैं। यह प्रतिमान उत्पादन केन्द्रित कम है, और उपभोक्ता केन्द्रित' अधिक है। परिणामस्वरूप अब बाजार की शक्ति आपूर्तिकर्ताओं के हाथों से खिसक कर ग्राहकों के पास पहुँच रही है।

17.2.1 प्रक्रियाएं/घटक

आपूर्ति श्रृंखला की प्रक्रिया में उत्पाद–पूर्व एवं उत्पाद पश्च के सभी कामों से लेकर अन्ततः उत्पाद का ग्राहक के हाथों तक पहुँचने के सभी काम शामिल होते हैं। ये सभी प्रक्रियाएं या कार्य घटक परस्पर निर्भर होते है। अतः व्यवसाय को एक त्रुटिहीन आपूर्ति श्रृंखला की रचना के लिए इन सभी कार्यों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। आपूर्ति श्रृंखला प्रक्रियाओं को वितान संपूर्ण व्यवसाय व्यापी होता है और इसमें विभिन्न घटकों की सुस्पष्ट सीमाएं रहती है। आपूर्ति श्रृंखला में किसी भी व्यावधान से बचने के लिए उन सीमाओं का बोध एवं सुस्पष्ट प्रबंधन आवश्यक होता है। आपूर्ति श्रृंखला में कुछ अनिवार्य प्रक्रियाएं/घटक इस प्रकार होते हैंः

(i) **नियोजनः** यह उत्पाद की मांग का पूर्वाकलन कर उसकी आपूर्ति के लिए आपूर्ति श्रृंखला के संबंध सूत्रो के बीच संयोजन ही है। इसके शमिल हैः (क) सामग्री प्रापण, (ख) प्रकार्य, (ग) उत्पादन, (घ) विक्रय एवं आपूर्ति, तथा (च) यह निर्णय करना कि किस समय और क्या आपूर्तियां आवश्यक होंगी।

इसीलिए आपूर्ति श्रृंखला की स्थापना प्रारंभ करते हुए ही उपयुक्त युक्तियों की पहचान कर उन्हें निर्धारित कर लेना आवश्यक होता है।

(ii) उत्पाद जीवन वृत प्रबंधनः यह किसी उत्पाद के समस्त जीवन काल का प्रबंधन है–अर्थात् उसके विचार अभियांत्रिकी और अभिकल्पना से लेकर उसके निर्माण, सेवा और अन्नत; अपशिष्ट पुनः चक्रण पर ध्यान दिया जाता है। सॉफ्टवेयर तन्त्र इन प्रक्रियाओं को एक साथ लाकर उद्यमव्यापी सहयोग संभव बना देते हैं और एक ''उत्पाद सूचना तन्त्र'' की रचना हो जाती है जो किसी भी उत्पाद के जीवन वृत की रीढ़ की तरह कार्य करता है।

(iii) **प्रापणः** इस प्रक्रिया में शमिल हैः (क) सामग्रियो, वस्तुओं और सेवाओं को प्राप्त कर व्यवसाय की जरूरतों को पूरा करना तथा (ख) गुणवत्ता, उचित कीमत एवं उन वस्तुओं के सही मूल्यमान का निर्धारण प्रापण एवं सोत निर्धारण कार्य दल के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह तय करने की रहती है कि कंपनी को कितनी मात्रा के क्रयादेश मिलेंगे और उनके लिए कितनी सामग्री आदि खरीदना उपयुक्त रहेगा व्यवसाय की दृष्टि से इन सामग्रियों की कमी या अधिकता, दोनों ही हानिकर माने जाते हैं।

(iv) संमरणः यह आपूर्ति श्रृंखला के प्रारंम से लेकर कंपनी के ग्राहकों तक उत्पादन पहुँचाने के लिए आवश्यक परिवहन एवं भण्डारण का कार्य है। इसी में उत्पाद– सेवा वापसी तथा पुनः चक्रण भी शमिल हो जाते है। इसमें आगम–निर्गम वाहनों का प्रबंधन, उत्पादन पूर्व एवं पश्च दशाओं में सामग्री और सामान के भण्डारण के लिए उपयुक्त स्थान गौदाम की व्यवस्था, भण्डार नियंत्रण तथा ग्राहक सेवाएं शमिल रहती हैं।

(v) विनिर्माण करनाः इस प्रक्रिया में वस्तुओं के उत्पादन कार्य की क्रमवार निगरानी, दस्तोवज निर्माण एवं नियंत्रण शमिल हैं। इससे उत्पादन एवं प्रक्रियाएं यथा संभव कम बोझिल बनी रहती है। यह गुणवत्ता बनाएं रखने और सुधारने में सहायक है तथा कार्य को धारणीय बनाए रखकर ग्राहक की संतुष्टि बढ़ाता है। यह तन्त्र कृत्रिम प्रज्ञा (AI) तथा IoT आधारित तन्त्रों का प्रयोग कर उत्पादन प्रक्रियाओं को व्यवस्थित एवं स्वचालित बनाता है।

(vi) सूचना तन्त्रः उत्पादन प्रक्रिया में अनेक आन्तरिक और बाहरी इकाइयाँ शमिल होती हैं जिनके लिए 'जानकारी' मिलना बहुत आवश्यक होती है। किसी वस्तु विशेष की मांग और आपूर्ति की बाजार की प्रवृत्तियों को तभी ही ठीक से समझा जा सकता है जब उनकी जानकारी व्यवसाय के विभिन्न स्तरों तक समय रहते अच्छी तरह से पहुँचाई जा सके। सफलता के लिए

आवश्यक है कि व्यवसाय को उत्पादन के विभिन्न पहलुओं के विषय में नवीनतम जानकारी मिलती रहे। यह अंतिम प्रयोक्ता तक तैयार उत्पाद पहुँचने तक उसके क्रयादेश की समुचित संपूर्ति को सुनिश्चित करेगी।

(vii) वस्तुओं की वापसीः किसी भी व्यवसायिक प्रंकिया में विभिन्न परिस्थितियों में कुछ सामान वापस भी आ ही जाता है। सर्वोत्तम गुणवत्ता नियंत्रण प्रक्रिया में भी क्षणिक चूक हो सकती है। आधुनिक व्यवसाय में ग्राहक की पूर्ण संतुष्टि पर आग्रह होता है। इसी लिए माल वापसी की पूर्व परिभाषित व्यवस्था रहती है। नुक्सदार वस्तु की वापसी की व्यवस्था जितनी दक्षता–पूर्ण होगी, ग्राहक की संतुष्टि उतनी ही अधिक होगी। उपर्युक्त प्रक्रिया/घटक उत्पादक, थोक विक्रेता और सेवा प्रदाता, सभी पणधारियों के लिए अपनी कार्य प्रणाली में एक उचित संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं।

17.2.2 संमरण

संमरण आपूर्ति श्रृंखला का वह भाग है जिसमें ऐसे नियोजन, व्यवहारिक रूप देना और नियंत्रण करना शमिल हैं जो वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को सुदक्ष एवं प्रभावी बनाए रखते हैं। यह सभी उन सूचनाओं से संबंधित रहता है जो उपभोग बिन्दु से आरंभ हुई हैं और जिन पर ध्यान देना ग्राहक की जरूरतों को पूरा करने के लिए अनिवार्य होता है। संमरण के महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण इस प्रकार हैंः

(i) संमरण आपूर्ति श्रृंखला का एक विशिष्ट भाग है और पूरी श्रृंखला के अच्छे निष्पादन के लिए आवश्यक है।

(ii) संमरण आपूर्ति श्रृंखला का एक विशिष्ट एवं अपने आपमें 'संपूर्ण' अंग है। संभरण तन्त्र के कर्तागण आपूर्ति श्रृंखला में उनके लिए निर्दिष्ट कार्यों के लिए ही उत्तरदायी होते हैं। ये एक स्थान से दूसरे तक सामान ले जाने, उसका भण्डारण करने, उसके लिए उपयुक्त जानकारी एवं दस्तोवज तैयार करने के लिए जिम्मेदार होते हैं कुशल जानकारी सौंपने और उसका 'प्रसंस्करण में उपयोगी रहें।

(iii) यह विभिन्न परिवहन सुविधाओं का प्रयोग कर वस्तुओं के परिवहन एवं भण्डारण (अल्प एवं दीर्घकालिक) की व्यवस्था करता है।

(iv) यह आपूर्ति श्रृंखला में सहभागियों के साथ सूंचना सांझी करने पर नियंत्रण करता है।

(v) कुशल संमरण प्रबंधन का अर्थ है दक्षतापूर्ण परिवहन और भण्डारण। संमरण प्रदाता भूतल, जल एवं वायु आधारित विभिन्न परिसंपदाओं का वस्तुओं के शीघ्र एवं सुदक्ष परिवहन के लिए उपलब्ध कराते है।

(vi) वस्तुए गंतव्य पर पहुँचने पर संमरण उन्हें गोदाम या अन्य सुविधाओं में संभाल कर रखते हैं जब तक आपूर्ति श्रृंखला के अगले सोपान या अंतिम ग्राहक तक उन्हें पहुँचाने के लिए जरूरत नहीं हो।

(vii) कुछ संमरण व्यवसाय वितरण (अर्यात सामान को बांटने) के विशेषज्ञ होते है। इस कार्य को 'अन्तिम मील पर सुपुर्दगी' कहा जाता है। संमरण व्यवसाय अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ इस प्रकार हैः

(i) आन्तरिक संमरणः इसमें थोक, खुदरा व्यापारी एवं ऐसे बड़े निकाय शामिल हैं जिन्होंने अपने निजी संमरण प्रभाग बनाए होते हैं।

(ii) संमरण सेवा प्रदाताः ये कंपनियाँ मूल उद्‌गम से अंतिम प्रयोक्ता तक सामग्रियां/वस्तुएं पहुँचानी हैं। ये परिवहन, भण्डार, पैकिंग, तथा भेजे जा रहे माल की सुरक्षा की जिम्मेदारियां उठाती है।

(iii) तृतीय पक्ष संमरणः ये अनेकों निकायो को संमरण सेवाएं प्रदान करने वाली कंपनियां है। इनकी सेवाएं हवाई, रेल या सड़क द्वारा प्राप्त हो जोती है–या फिर ये शीत भण्डारण जैसी विशिष्ट सेवाएं प्रदान कर सकती हैं।

(iv) विपरीत संमरणः ये उत्पादकों को वापिस किए जा रहे सामान को पहुँचाती हैं।

(v) भण्डार गृह सेवा प्रदाताः ये परिवहन का जिम्मा नहीं लेती, केवल भण्डारण सुविधाएं प्रदान करती है।

(vi) कोरियर सेवाः ये संमरण प्रदाता अन्तिम ग्राहक तक (Last mile) सामान पहुँचाने का कार्य ही करते हैं।

17.2.3 वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला एवं संमरण तन्त्र : एक तुलना

यद्यपि दोनों पद–बंधों में परस्परता है, फिर भी वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला और संमरण तन्त्र में कुछ बड़े अन्तर भी विद्यमान हैं। यह सत्य है कि संमरण व्यवहार ही आपूर्ति श्रृंखला को गतिमान बनाए रखता है। किन्तु आपूर्ति श्रृंखला में अनेक सोपान सम्मिलित होते है। यही सोपान आपूर्ति श्रृंखला और संमरण कार्यों की भूमिकाओं को अलग स्वरूप प्रदान करते हैं। तकनीकी दृष्टि से संमरण कार्यों को आपूर्ति श्रृंखला कार्यो का एक उपसमुच्चय माना जा सकता है किन्तु संमरण की व्याख्या केवल आपूर्ति श्रृंखला में संदर्भ तक सीमित रखना उपयुक्त नहीं रहता । संमरण व्यवहार के परिणाम प्रभावों का परिमाण वितान अति विशाल ही नहीं है बल्कि संपूर्ण आपूर्ति श्रृंखला के लिए नितान्त आवश्यक भी होता है। यदि इन कार्यों को ठीक से किया जाता है तो कंपनियों को एक स्पर्धागत लाभ प्राप्त होता है जो उनके ग्राहकों के

लिए भी मूल्यवान सिद्ध होता है। आपूर्ति श्रृंखला और संमरण के कुछ सांझे आयाम इस प्रकार हैं; ?

(i) दोनों ही वस्तुओं, सेवाओं या सूचनाओं पर केंद्रित हैं।

(ii) दोनों का अन्तिम ध्येय कंपनी की सफलता और उसे एक विशेष पहचान दिलाना है।

(iii) दोनों ही आपूर्तिकर्ता से उत्पादक से थोक विक्रेता और अंततः खुदरा विक्रेता से उपभोक्ता तक वस्तुओं और सेवाओं को पहुँचाने के गिर्द ही घूमते दिखाई देते है।

7.2.4 अर्द्ध संवाही

अर्द्ध–संवाही उद्योग में (i) उपकरण, (ii) सामग्री, और (iii) परिक्षण तथा पैकिंग की तीन गतिविधियों का अनूठा सम्मिश्रण होता है। इस उद्योग का समस्त विनिर्माण कार्यों वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं पर निर्भर रहता है, कोई भी देश सारे कार्य सोपान अकेले नहीं कर पाता। विश्व के लगभग 93 प्रतिशत अर्द्ध–संवाहियों का विनिर्माण ताईवान में होता है, किन्तु अधिकांश चिप–अभिकल्प और शोधकर्म संयुक्त राज्य अमेरीका में होता है। किन्तु सं.रा. अमेरीका ''अभिकल्प इंजिनियरो के लिए अन्य देशों पर निर्भर करता है।

अर्द्ध–संवाही उद्योग एक वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला है। यह 25 से 300 सेन्टीमीटर व्यास क्षेत्र में किसी 'चिप पर लाखों, यहां तक कि अरबों ट्रांजिस्टरों का एक संजाल तन्त्र हो सकते हैं। अर्द्ध संवाही आपूर्ति श्रृंखला के हृदय स्थल पर ताईवान सेमी कंडक्टर मैन्यूफेक्चरिंग कंपनी, (TSMC) जिसकी अपनी उन्नत ढलाईशालाएं हैं, अपने महत्त्व के आधार पर ही अवस्थित है। वर्तमान समय की सबसे बड़ी अभियांत्रिक चुनौती अर्द्ध संवाहियों का निर्माण एवं उन्हें संक्षिप्त से संक्षिप्त रूप प्रदान करना ही रही है। बैंकर (2023) ने अर्द्ध–संवाही आपूर्ति श्रृंखला का सबसे अधिक मेद्यताग्रस्त आपूर्ति–श्रृंखला के रूप में निरूपण किया है।

चीन और सं.राज्य के बीच संबंधों में तनाव की परिणति TMSC के संयंत्र पर एक प्रक्षेपणास्त्र के आक्रमण में हो सकती है। विश्व अर्थतन्त्र का कोई अन्य आयाम इतनी कम फर्मों पर निर्भर नहीं है। तेल पदार्थों की खरीदारी अनेक स्रोतों से हो सकती है किन्तु संगणन क्षमता तो अर्द्ध संवाही की सुलभता पर ही निर्भर है और उसमें अनेक बाधाएं या अवरोध सहज संभव दिखाई दे रहे है। यहाँ उत्पन्न बाधाएं सारी आपूर्ति श्रृंखलाओं को अवरूद्ध कर सकती है। आज अर्द्ध–संवाही स्मार्ट फोन से लेकर विद्युतचालित कारों और वायुयानों तक में आवश्यक रूप से पाए जाते है। यह हमारे जीवन को आधुनिक बनाने वाली सभी चीजों में विद्यमान हैं। इनमें से अधिकांश का

निर्माण एक अकेली कंपनी TSMC कर रही है। अतः अर्द्ध–संवाही उद्योग ताईवान की वह 'सिलिकॉन ढ़ाल' है जो विश्व को इस द्वीप की रक्षा करने को विवश कर रही है। मित्रता की तट पारीयता की रचना करने वाला अर्द्ध–संवाही निर्माण उस विश्व की एक वास्तविकता है जो अपनी पुनर्रचना भौराजनयिक जौखिमों के गिर्द कर रहा है।

बोध प्रश्न –1

1) ''आपूर्ति श्रृंखला' का क्या अर्थ है? ''वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला' पदबंध किस बात का महत्त्व दर्शाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) आपूर्ति श्रृंखला में आवश्यक प्रक्रिया/घटक क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) ''संमरण तन्त्र'' किस बात का महत्त्व स्पष्ट करता हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) संभरण व्यवसाय के विभिन्न प्रकार भेद क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

17.3 वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला बनाम वैश्विक मूल्य वृद्धि श्रृंखला

किसी भी फर्म के भीतर आपूर्ति श्रृंखला और मूल्य वृद्धि की प्रक्रिया साथ–साथ चलती है। अच्छी मूल्य वृद्धि आपूर्ति श्रृंखलाएं इन चार मापकों के अनुसार श्रेष्ठता पाने के प्रयास करती हैं:

(i) **'गति' या तीव्रता:** [अथवा चक्र संपूर्तिकाल]: यह कार्यारम्भ से लेकर उत्पादन एवं वितरण प्रक्रियाओं में लगने वाला सारा समय है।

(ii) **'गुणवत्ता':** आपूर्ति श्रृंखला गतिविधियों की सापेक्ष विश्वस्तता ही है।

(iii) **लागत:** व्यय घटाकर मूल्यवान में वृद्धि अथवा पूर्ववत लागत पर ग्राहक को प्राप्त हितलाभ में वृद्धि।

(iv) **लचीलापन:** ग्राहक की जरूरतों में परिवर्तन के प्रति आपूर्ति श्रृंखला की प्रतिक्रियता।

उपर्युक्त चार मापकों, अर्थात् गति, गुणवत्ता, लागत और लचीलेपन में संतुलन स्थापित करके ही सर्वश्रेष्ठ मूल्यवृद्धि आपूर्ति श्रृंखला उच्चतम मूल्यवृद्धि की संप्राप्ति के प्रयास करती है।

वैश्विक मूल्यवृद्धि श्रृंखला (GVC): मूल्य वृद्धि श्रृंखला का विचार माइकल पोर्टर ने 1985 में अपनी पुस्तक Competitive Advantage: Creating and Sustaining Superior Performance में प्रतिपादित किया था। उसने इस विचार का प्रयोग किया था कि फर्मे किस प्रकार से कच्चे माल का प्रयोग कर ऐसे उत्पाद बनाती हैं जो अन्ततः जन सामान्य को बेचे जाते हैं। यह GVC का विचार ''मूल्य रचना'' के कारण ही व्यापक रूप से स्वीकृत हुआ है। इसमें श्रृंखला की गतिविधियों को समग्र रूप में ग्रहित किया गया है। यह GVC वैश्विक उद्योगों के प्रतिएक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है जिस पर दोनों पक्षों से विचार कर सकते हैं: ऊपर से नीचे की ओर या फिर नीचे से ऊपर की ओर। 'ऊपर से नीचे' दृष्टिकोण में प्रमुख संकल्पना वैश्विक मूल्य वृद्धि श्रृंखला के 'प्रशासन' को माना जाता है। यह प्रशासन अग्रणी फर्मों तथा वैश्विक उद्योगों के संगठनात्मक पक्षों पर केन्द्रित रहता है। 'नीचे से ऊपर' दृष्टिकोण में मुख्य संकल्पना उन्नयन (upgrading) की रहती है। यह उन्नयन देशों क्षेत्रों एवं अन्य आर्थिक पणधरियों

द्वारा वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपनी यथास्थिति बनाए रखने या फिर उसमें सुधार पर केन्द्रित रहता है।

मूल्यवृद्धि का तात्पर्य मूल्य निर्माण और मूल्य प्रग्रहण, दोनों से होता है। मूल्यवृद्धि का अर्थ सदा अभिलक्षणों और कार्यों में सुधार नहीं होता। इसमें बिक्री के बाद सेवा जैसे अनेक कारक शामिल रहते हैं। एक दक्ष मूल्यवृद्धि श्रृंखला का परिणाम लक्षित प्रयास, लागत में कटौती और बर्बादी में कमी भी हो सकता है। अब सभी वैश्विक मूल्यवृद्धि श्रृंखलाएं ज्ञान गहन होती जा रही है। निम्न कौशल श्रम का उत्पादक कारक रूपी महत्व कम हो रहा है। 1990 के दशक से विश्वभर में उत्पादक संजाल के निरंतर विकास से मूल्यवृद्धि श्रृंखलाओं की जटिलता में वृद्धि हो रही है। पिछले दशक में वैश्विक मूल्य वृद्धि श्रृंखलाओं में ये बड़े बदलाव दिखाई दिए हैं:

(i) वस्तु उत्पादक मूल्य वृद्धि श्रृंखलाएं अब कम विदेश व्यापार गहन रह गई हैं, उनके सकल उत्पाद में अब निर्यात का अंश कम हो रहा है।

(ii) वैश्विक मूल्यवृद्धि श्रृंखलाओं में अब 'सेवा' क्षेत्र की भूमिका में वृद्धि हो रही है। सेवा व्यापार की वृद्धि वस्तु व्यापार से 60 प्रतिमान तीव्र रही है।

(iii) अब कंपनी निर्णय प्रक्रिया में निम्न मजदूरी के अतिरिक्त अन्य कारक भी शामिल हो रहे हैं। भविष्य में स्वचालन और AI (कृत्रिम प्रज्ञा) से इस प्रवृत्ति को और अधिक बल मिलेगा। ये श्रम प्रधान उत्पादन को पूंजी प्रधान उत्पादन प्रणाली में बदलने का काम करेंगे।

(iv) वैश्विक मूल्यवृद्धि श्रृंखलाएं अधिक ज्ञान गहन हो रही हैं। अनेक श्रृंखलाओं में तो मूल्यवृद्धि अधिक उच्चस्तरीय कार्यों में होने लगी है जैसे कि शोध एवं विकास तथा अभिकल्पना। साथ ही, निम्न स्तर पर वितरण, विपणन और विक्रय पश्चात् सेवाएं भी अधिक मूल्य वृद्धि करने लगी है। ये प्रवृत्ति विशेष रूप से औषधि निर्माण और उपभोक्ता इलैक्ट्रोनिक्स में दिखाई देने लगा है। इनमें 'आभासी विनिर्माण'' कंपनियों का उदय भी होने लगा है। वे उत्पाद विकसित कर उसका वास्तविक विनिर्माण ठेके पर कराने लगी हैं।

(v) मूल्यवृद्धि श्रृंखलाओं का स्वरूप वैश्विक की अपेक्षा क्षेत्र केन्द्रित अधिक हो रहा है। एक ही क्षेत्र के देशों के बीच वस्तु व्यापार के अंश (दूर दराज के देशों से व्यापार में अंश की अपेक्षा) कम हो रहे हैं।

आपूर्ति श्रृंखला और मूल्यवृद्धि श्रृंखलाओं के बीच प्रतिच्छादन है और दोनों अन्ततः प्रतिपूरक भी हो जाती है, फिर भी उनके स्वरूप स्पष्टतः पृथक पृथक हैं। साथ मिलकर वे संगठानात्मक सफलता को प्रभावित करती हैं (इनके समान प्रायः होने के भ्रम का कारण यही है कि दोनों में ही संमरण

तन्त्र तथा माल को पहुँचाने की प्रक्रियाएं सांझी लगती हैं। किन्तु इनके बीच अन्तर इनके वित्तीयन तथा व्यवसाय जोखिम को लेकर होते हैं। जहां आपूर्ति श्रृंखलाओं का मुख्य सरोकार वस्तुओं एवं वस्तु बाजारों से रहता है वहीं मूल्य वृद्धि श्रृंखलाएं विभेदित वस्तुओं और विभाजित बाजारों में अधिक सक्रिय दिखाई देती है। आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन का लक्ष्य लागतें घटाना, कंपनी का कुल कीमत में अंश बढ़ाना और बाजार अंश बढ़ाना होता है। इससे पृथक मूल्य वृद्धि श्रृंखला प्रबंधन का प्रत्येक सोपान पर लाभप्रदता बढ़ाने और उत्पादों को विभेदित कर उन्हें विखंडित बाजारों में बेचने पर आग्रह रहता है। दूसरे शब्दों में जहाँ आपूर्ति श्रृंखला का आग्रह दक्षता, बाजार तक पहुँच और अधिक माल के वितरण पर रहता है वहीं मूल्य वृद्धि प्रबंधन ''गुणवत्ता, सेवा और फुर्तीलेपन पर आग्रह करता है, यहां माल का वितरण उपभोक्ता की मांग द्वारा निर्धारित होता है, उत्पादक क्षमता के प्रयोग की विवशता द्वारा नहीं।

बोध प्रश्न –2

1) वह चार मापक बताएं जिनके से तुलना द्वारा मूल्यवृद्धि श्रृंखला कंपनियों को अधिकतम मूल्य वृद्धि प्रदान करता है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) वे दो पृथक दृष्टिकोण क्या है जिनसे GVC का एक व्यापक परिदृश्य देखा जा सकता है? इसकी मुख्य संकल्पना क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) 'आपूर्ति श्रृंखला' और 'मूल्य श्रृंखला' में भेद स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 आपूर्ति श्रृंखला व्यावधान तथा जोखिम प्रबंधन

आपूर्ति श्रृंखला में अनेक कारक व्यावधान पैदा कर सकते हैं। विश्व स्तर पर इस प्रकार की घटनाओं के कारण भारी हानियां हो रही हैं। इन घटनाओं को उनके प्रकार, गहनता, अवधि, स्रोत और प्रभाव के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता हे। इनके उत्तरदायी कारके इस प्रकार हो सकते हैं:

(i) वैश्विक घटनाक्रम में आर्थिक संकट, व्यापक श्रमिक हड़ताल (परिवहन आदि में) शामिल हो सकते हैं।

(ii) आपूर्तिकर्ताओं को तीनों प्रकार की व्यावधान जोखिमें उठानी पड़ सकती हैं– वैयक्तिक, स्थानीय तथा वैश्विक।

(iii) उच्च प्रायिकता किन्तु मध्यम दर्जे के व्यावधानों में शामिल हैं: अपूर्वाकलित मांग, अचानक से मिले क्रयादेश, आपूर्ति में कमी, कंपनी का बिक जाना, माल पहुँचाने और स्रोत से प्राप्ति में संरोध।

(iv) साइबर हमले, डेटा में सेंधमारी, कुशल कर्मियों का काम छोड़कर चले जाना आदि 2014 के बाद से बहुत बार देखा गया है।

व्यावधान श्रृंखला में ऊपरी स्तर पर हो सकते हैं। यह सामग्री आपूर्तिकर्ता, विनिर्माण में बाधा, उत्पादन गुणवत्ता समस्याएं, संसाधन सीमाएं आदि कारण बन सकते हैं। निचले स्तर के व्यावधान मांग पक्ष के हो सकते हैं। (जैसे कि बाजार में विधिक, विनियामक और अप्रत्याशित वित्तीय परिवर्तन)। कुल मिलाकर आपूर्ति श्रृंखला में व्यावधान समूची श्रृंखला और इसमें शामिल फर्मों को प्रभावित कर सकते हैं। इन व्यावधानों के कुछ हानिकर प्रभाव इस प्रकार हैं: (i) उत्पादिता की हानि, (ii) कार्य की लागत में वृद्धि, (iii) सेवा में त्रुटि, (iv) बिक्री में कमी, (v) ग्राहकों की शिकायतें, (vi) आगम में कमी, (vii) कंपनी के ब्रांउ की प्रतिष्ठा को ठेस आदि।

कोविड–19 की महामारी व्यापार, वित्त, स्वास्थ्य, शिक्षा व्यवस्था, व्यवसायों और समाज के लिए एक ऐसा वैश्विक व्यावधान थी जिसे मानव समाज समाज ने 100 वर्षों से नहीं झेला था। इसने व्यावसायियों को राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर मनुष्यों और माल के संभरण पर पुनः विचार करने को बाध्य कर दिया था। फर्मों को आपूर्ति के केवल एक स्रोत पर निर्भर रहने की भीषण समस्याओं से भी अवगत करा दिया।

वैश्विक व्यापार पर तो विपरीत प्रभाव पड़ा ही। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला से जुड़े चार ऐसे मुद्दे हैं जो महामारी के वैश्विक व्यापार पर घातक प्रभावों की व्याख्या कर देते हैं। ये हैं:

(क) **भौगोलिक :** कोविड–19 से पूर्व किसी प्राकृतिक आपदा ने समूचे विश्व जन समुदाय को इस प्रकार प्रभावित नहीं किया था।

(ख) **औद्योगिक :** अधिकांश व्यावधान/आपदाएं प्रायः इनेगिने उद्योगों को ही प्रत्यक्षतः प्रभावित करते रहे हैं, अन्य पर कुछ परोक्ष प्रभाव ही देखे गए हैं। किन्तु कोविड–19 को सभी उद्योगों और बाजारों ने प्रत्यक्षतः भुगता है।

(ग) **मांग पक्षः** उच्च कीमत वस्तुओं की मांग में उनके संभावित खरीदारों द्वारा अपनी खरीदारी स्थगित करने या खरीदारी का विचार त्याग देने से कमी आ सकती है।

(घ) **अवधि :** भूकंप और सूनामी जैसी प्राकृतिक आपदा से भी प्रभावित देश कुछ ही वर्षों में उबर आते हैं। किन्तु कोविड–19 के वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं एवं देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर दुष्प्रभाव एक दशक या उससे भी अधिक समय तक बने रहने की आशंकाएं हैं।

वैश्विक परिवेश को देखते हुए महामारी और रूस–युक्रेन युद्ध के कारण वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में बहुत भीषण व्यावधान महसूस किए जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप कुछ वैश्विक आर्थिक शक्तियों वाला विश्व अनेक आर्थिक–राजनीतिक शक्ति केन्द्रों की ओर बढ़ता दिखाई दे रहा है। मंदीकरण के कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था अधिक विखंडित होती जा रही है। महामारी जन्य आर्थिक संकट ने आपूर्ति श्रृंखलाओं की अनेक मेद्यताएं उजाकर कर वैश्वीकरण की प्रक्रिया के बारे में ही सवाल खड़े कर दिए हैं। रूस–युक्रेन युद्ध की एक सीख यह भी है कि उत्पादन या आपूर्ति के केन्द्र अपने देश में ही या निकटवर्ती होने चाहिए। लागत वृद्धि के कारण कंपनियों को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में दक्षता से अधिक वरीयता उस श्रृंखला को चलाए रखने को देते देखा गया है। परिणाम स्वरूप ये श्रृंखलाएं सिकुड़ कर स्थानीय स्वरूप ले रही हैं। इसने फर्मों की विनिर्माण एवं आपूर्ति श्रृंखला विषयक युक्तियों की भेद्यताओं को स्पष्ट किया हे। इसके साथ ही सं.राजय–चीन के बीच आर्थिक 'युद्ध' जैसी परिस्थितियों ने भी एक आर्थिक राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया है।

बोध प्रश्न –3

1) आपूर्ति श्रृंखला में व्यावधान लाने में सक्षम कुछ (क) वैश्विक घटनाओं और (ख) उच्च प्रायिकता घटनाओं के बारे में बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) आपूर्ति श्रृंखला व्यावधान के कुछ हानिकर परिणाम क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में व्यावधान के माध्यम से कोविड–19 तथा रूस–युक्रेन युद्ध ने विश्व को क्या शिक्षाएं दी हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.6 भारत एवं वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाः अवसर और चुनौतियां

भारत वैश्विक और विशेषकर दक्षिण एशियाई अर्थव्यवस्था के संजाल में अपनी निम्न भागीदारी के कारण एक 'बहिश्याई' ही कहला सकता है। इसकी वैश्विक मूल्यवृद्धि श्रृंखला में हिस्सेदारी भी न्यून मूल्य वृद्धि विनिर्माण कार्यों तक ही सीमित है। यह तथ्य भारत की वैश्विक मूल्यवृद्धि श्रृंखला में भागीदार कंपनियों के लिए उच्चतर सीढ़ियों या पायदानों पर चढ़ने की आवश्यकता को स्पष्ट कर देता है। भौगोलिक अवस्थिति भारत को वैश्विक मूल्य वृद्धि व्यापार में भागीदारी के कुछ सुअवसर प्रदान कर रही है तो इसकी भागीदारी में संलिप्त कंपनियों के लिए आर्थिक उन्नयन की चुनौतियां भी पेश कर रही है। भारत को महामारी पश्चात् विश्व में उभर रही भौराजनीति परिस्थितियों में वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के संभावी पुनः संतुलन से कुछ सुयोग प्राप्त हो रहे हैं। इस आपूर्ति श्रृंखला में सक्रिय भागीदारी के भारत के

दावे को इन दो कारकों से बल मिल रहा हैः (i) विविधतापूर्ण निगमित परिवेश तथा (ii) अपेक्षाकृत सस्ती कौशल युक्त श्रम शक्ति।

वर्ष 2021 में आस्ट्रेलिया, जापान और भारत ने मिलकर एक सुनम्य आपूर्ति श्रृंखला पहल का सूत्रपात किया है। इसका लक्ष्य सुनियोजित उद्योग समूहों का विकास कर आपूर्ति श्रृंखलाओं का विविधिकरण करना है। जुलाई 2022 में भारत ने 17 अन्य देशों के साथ मिलकर दीर्घकालिक सुनम्य आपूर्ति श्रृंखलाओं के निर्माण की एक रूपरेखा तैयार की है। सितंबर 2022 में भारत ने अपनी आपूर्ति श्रृंखला को और क्षमतावान बनाने के लिए राष्ट्रीय संभरणतंत्र नीति प्रारंभ की है। ये सभी कारक मिलकर भारत को व्यवसाय हेतु एक स्थिरतापूर्ण परिवेश प्रदान कर एक सुनम्य आपूर्ति श्रृंखला की रचना में सहायक हो रहे हैं। अनेक सकारात्मक सूचक भारत को चीन के एक विकल्प का रूप प्रदान कर रहे हैं। विश्व मानचित्र पर भारत वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का एक प्रबल स्तंभ बनने की ओर अग्रसर है। किन्तु एक वैकल्पिक निर्माणों के निर्यात का केन्द्र बनने भारत की प्रबल अभिलाषा में चीनी आदानों के आयात पर निर्भरता एक बड़ी बाधा बन रही है। आपूर्ति श्रृंखला के लिए इनका विकास करना आवश्यक हैः (i) प्रभावी डिजिटल शक्ति आधारित प्रापण का व्यवहारिक प्रतिमान और (ii) पूरे आपूर्ति परिवेश को सहारा देने के लिए कार्यरत् नई व्यवस्थाएं। ऐसी ऊपरी संरचना में भारी निवेश एक सशक्त आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन व्यवस्था की रचना के लिए अनिवार्य है– यही नए वैश्विक परिदृश्य में एक अच्छा स्थान दिला सकता है।

'चिप्स' और प्रौद्योगिकी को लेकर विश्व स्तर पर स्पर्धा में वृद्धि हो रही है। महामारी ने व्यक्तियों और सामान के आवागमन पर रोक ने वैश्विकृत आपूर्ति श्रृंखलाओं की भेद्यता भी सरकार द्वारा घोषित कामबंदी के कारण उजागर कर दी और कंपनियाँ चीन से बाहर, यथा संभव अपने मूल स्थान के निकट या मित्र देशों में अपने कामकाज को स्थानांतरित करने का विचार करने लगी।

इसने भारत को एक सुयोग प्रदान किया है। भारत की दिसंबर 2021 में लागू की गई अर्द्ध–संवाही नीति बहुत सर्वांगपूर्ण है। यह व्यवसाय पूंजी और श्रम दोनों में ही गहनतापूर्ण है। वित्तीय, भौराजनीतिक और पर्यावरण संबंधी कारणों से आपूर्ति श्रृंखलाएं बहुत दबाव झेल रही है। नई चुनौतियां सामने आने से इन श्रृंखलाओं के लिए व्यवसाय परिवेश निरंतर बदल रहा है। ये नई चुनौतियां इन तीन कारकों के कारण पैदा हो रही हैः

(क) फर्में आन्तरिक एवं वैदेशिक, दोनों स्थानों पर बाह्य प्रापण का सहारा ले रही हैः

(ख) पहले फर्म कहां से प्रापण करना है इसे एक उद्यम के स्तर का निर्णय ही मानती थीं, पर अब इस निर्णय का अपनी आपूर्ति श्रृंखला के विभिन्न सोपानों के जोड़ रही है; और

(ग) वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला की संकल्पना एवं क्षितिज में बदलाव के कारण युक्ति एवं उद्देश्यों के प्रति दृष्टिकोण भी बहुत बदले हैं। यह ग्राहक को प्रदान की जा रही वस्तुओं के मूल्य पर आधारित हैं।

स्पर्धा युक्तियों में समेकन व्यवहार के बाद भी वास्तव में सुसंयोजित वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला की प्राप्ति कठिन ही रहती है। भौगोलिक विविधता के कारण किसी उत्पाद की बाजार में विफलता का स्वरूप एक स्थानीय समस्या न होकर बहुत व्यापक समस्या भी हो सकती है। ये केवल अंतिम खरीदार नहीं बल्कि आपूर्ति श्रृंखला के अनेक स्तरों एवं सोपानों को प्रभावित कर सकती है। स्थानीय रूप से पैदा होने वाली समस्या श्रृंखला के अन्य स्तरों तक भी पहुँच सकती है और उसके प्रभाव बहुगुणित हो सकते हैं। मानवीय तन्त्र या व्यवस्थाएं वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं की समस्याओं से निपटने में पर्याप्त नहीं रहता। कोविड आपूर्ति श्रृंखला की समस्याओं का कारण नहीं था। उसने तो केवल यही स्पष्ट किया कि वह स्वयं कितनी गंभीर समस्या था। आपूर्ति श्रृंखला प्रक्रियाओं से जुड़ी चुनौतियां आन्तरिक भी होती हैं और बाह्य भी। वे आपूर्ति और मांग में अनिश्चितताओं की रचना करके श्रृंखला के क्रिया कलापों को जोखिमपूर्ण बना देती हैं। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में कुछ विशेष जोखिमें होती हैं जो उनके निष्पादन पर प्रभाव डालती हैं। इनमें शामिल हैंः (1) मुद्रा विनिमय दरों में उच्चावचन और अनिश्चितता (ii) आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता; तथा (iii) विनिमायक परिवेश में परिवर्तन। मुद्रा विनिमय दर परिवर्तन आपूर्तिकर्ता की मुद्रा में भुगतान वाली खेप के मूल्य को बदल सकते हैं। अतः उनके कारण खरीदारी के परिमाण और समय बिन्दु तो प्रभावित होते ही हैं आपूर्तिकर्ता के वित्तीय निष्पादन पर भी उनका प्रभाव रहता है। आन्तरिक आपूर्ति श्रृंखला की तुलना में वैश्विक श्रृंखला का प्रबंधन अधिक कठिन होता है। इन कठिनाइयों के कारा वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला से प्राप्य स्पर्धा हितलाभ 'कुंठित' हो जाते हैं। संक्षेप में वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं के समक्ष ये चुनौतियां आती हैः

(i) इनमें बहुत बड़े भौगोलिक अन्तर विद्यमान होते हैं।

(ii) परिवहन लागतें अधिक होती है।

(iii) भण्डार लागत के समप्रत्ययन से निर्णय जटिल हो जाते है।

(iv) आपूर्ति श्रृंखला के कारण कार्य संपादन में अधिक समय लगता है।

(v) स्थानीय संस्कृति, भाषा और सामान्य व्यवहार मांग पूर्वाकलन और सामग्री नियोजन जैसी व्यावसायिक प्रक्रियाओं की प्रभावित को कम हो जाती है।

(vi) विकासशील देशों में परिवहन एवं दूरसंचार की ऊपरी संरचनाओं में त्रुटियां पाई जाती हैं।

(vii) अपर्याप्त कर्मी कौशल

(viii) आपूर्तिकर्ता की सुलझता और उसकी गुणवत्ता

(ix) उपकरण और प्रौद्योगिकी प्रायः ऐसी चुनौतियां प्रस्तुत कर सकती हैं जिनसे विकसित देशों में सामना नहीं होता।

बोध प्रश्न –4

1) वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला निष्पादन से जुड़ी कुछ चुनौतियां बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) ऐसे कुछ कारक बताएं जो वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं का संचालन आन्तरिक आपूर्ति श्रृंखलाओं की अपेक्षा कठिन बना देते हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन क्या होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

17.6 सारांश

वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए महत्वपूर्ण होती है। विश्व अर्थव्यवस्था में भागीदारी पर ही विभिन्न देशों की समृद्धि प्राप्ति निर्भर करती है। (i) बाह्य प्रापण, (ii) तटपारीय प्रापण और (iii) लचीलेपन में पर्याप्त निवेश के कारण अनेक आपूर्ति श्रृंखलाएं जटिल एवं भंगुरताग्रस्त हो चली हैं। प्रत्येक सोपान पर संभरण तन्त्र ही किसी आपूर्ति श्रृंखला को गतिशील बनाए रखता है। किसी भी आपूर्ति श्रृंखला के प्रभावपूर्ण अभिकल्प का आधार उसकी प्रक्रियाओं, कार्यविधियों और व्यवस्था तन्त्रों की सुदृढ़ता में ही होता है। आपूर्ति श्रृंखलाव्यापी व्यवसाय प्रक्रिया समेकीकरण को ही आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन कहा जाता है। अनेक बाध्य एवं आन्तरिक घटनाक्रम आपूर्ति श्रृंखलाओं में व्यावधान ला सकते हैं– उन्हीं में संभरण तन्त्र से जुड़ी समस्याएं भी शामिल हैं। आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन पद बंध समूचे व्यवसायिक दर्शन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसमें आन्तरिक एवं बाह्य आपूर्ति श्रृंखला प्रक्रियाएं (संभरण सहित) सम्मिलित हैं। मूल्यवृद्धि श्रृंखला वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कंपनी अपने कच्चे माल को विनिर्माण कार्य द्वारा अधिक मूल्यवान बनाकर उपभोक्ताओं को बेचती है। आपूर्ति श्रृंखला में उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए सभी आवश्यक कदम सम्मिलित रहते हैं तो मूल्य वृद्धि श्रृंखला कंपनी को उद्योग में एक स्पर्धी हितलाभ सुलभ कराती है। कोविड महामारी तथा रूस–युक्रेन युद्ध ने, एक प्रकार से, भारत के लिए अपने विनिम्रण क्षमता एवं कौशल को बढ़ाकर वैश्विक मूल्यवृद्धि श्रृंखला का महत्वपूर्ण केन्द्र बनने का अवसर प्रदान किया है।

17.7 शब्दावली

चाबुक की मार : यह आपूर्ति श्रृंखला का ऐसा घटनाक्रम है जो खुदरा मांग के छोर पर उतार–चढ़ाव के कारण पूरी श्रृंखला में एक प्रतिक्रिया का संचार कर देता है। यह विनिर्माण छोर पर बहुत बड़े बदलाव का कारण बन सकता है। यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार ग्राहकों के स्तर पर मांग में एक छोटा सा बदलाव थोक विक्रेता, वितरक, विनिर्माता और सामग्री आपूर्तिकर्ता के स्तरों पर क्रमिक रूप से वृद्धिमान उच्चावचन का कारण बन सकता है।

फैब (निर्मति) : यह विनिर्माण प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त एक संक्षिप्त

शब्द है– और उत्पादन का एक फलन है। इसका प्रयोग विशेष रूप से अर्द्धसंवाही उद्यम की उत्पादन सुविधाओं के संदर्भ में होता है। एक अर्द्ध–संवाही निर्मति या निर्माणशाला ऐसा उत्पादन संयंत्र है जहां सिलिकॉन की पतली पतली परतों को एक समेकित सर्किट में बदला जाता है।

निर्विश्वीकरण : यह वैश्विक अर्थ व्यवस्था के अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण का नाम है।

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Jenkins, Abby (2022, July 25). Supply Chain Management vs Logistics: Differences, Similarities and Roles, *Oracle* NetSuite.
2) Meixell, M. J. and Gargeya, V. B. (2005). Global supply chain design: A literature review and critique. *Transportation Research Part E: Logistics and Transportation Review*, Vol. 41(6), pp. 531-550.

17.9 बोध प्रश्नों के लिए उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न –1

1) आपूर्ति श्रृंखला एक व्यवसाय से व्यवसाय संबंधों में क्रम बद्ध कार्यों एवं उसके संगठनात्मक घटक तत्वों से संबंधित है। 1990 के दशक से विश्व की अग्रणी कंपनियां वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला संरचना पर अधिकार जमाए हुए हैं। इलैक्ट्रॉनिक वाणिज्य (ई–कॉम) तथा इंटरनेट ऑफ द थिंग्स (IOT) के प्रादुर्भाव से नए रूप में व्यवसाय से व्यवसाय की आपूर्ति श्रृंखलाएं बनने लगी हैं जो उपभोक्ता पर अधिक केन्द्रित हैं। इन नए विकास क्रमों ने आपूर्ति श्रृंखला की संकल्पना को वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का रूप प्रदान कर दिया है।
2) नियोजन, जीवनवृत प्रबंधन, प्रापण, संभरण, विनिर्माण करना, सूचना नियंत्रण एवं उसका विभिन्न आवश्यक दिशाओं में संप्रेषण तथा भेजी गई खेप की वापसी।

3) संभरण तन्त्र का आशय आपूर्ति श्रृंखला की उस प्रक्रिया से है जो वस्तुओं/सेवाओं के प्रभावी प्रवाह एवं भण्डारण का नियोजन कर उसे लागू एवं नियंत्रित करती है।

4) आन्तरिक संभरण, तृतीय पक्ष संभरण, वापसी संभरण आदि।

बोध प्रश्न –2

1) गति, गुणवत्ता, लागत और नम्यता।

2) ऊपर से नीचे में प्रशासन तो नीचे से ऊपर में उन्नयन मुख्य संकल्पना होती है।

3) दोनों के बीच भेद उनके वित्तीय एवं व्यवसाय प्रक्रिया जोखिमों के आधार पर होता है। आपूर्ति श्रृंखला का प्रबंधन 'दक्षता, बाजार तक पहुँच और वितरण' में वृद्धि पर केन्द्रित रहता है। मूल्यवृद्धि प्रबंधन गुणवत्ता सेवा तथा चुस्ती के उपभोक्ता मांग के अनुसार वितरण पर ध्यान देता है।

बोध प्रश्न –3

1) (क) एक आर्थिक संकट, व्यापक परिवहन क्षेत्र में श्रम हड़ताल, (ख) अपूर्वाकलित मांग, अचानक मिले क्रयादेश, आपूर्ति में कमी, कंपनी बिक जाना, माल पहुँचाने में समन्वय और प्रापण विषयक संरोध।

2) (i) उत्पादिता हानि, (ii) कार्यलागत वृद्धि, (iii) सेवा में गिरावट, (iv) बिक्री में कमी, (v) उपभोक्ता शिकायतें, (vi) आगम में हानि और (vii) ब्रॉड की प्रतिष्ठा में हानि।

3) इन दो संकटों ने फर्मों को आपूर्ति के मात्र एक स्रोत पर निर्भरता की समस्या की अनुभूति करा दी। इससे विश्व व्यापार की संवृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़े।

बोध प्रश्न –4

1) (i) मुद्रा विनिमय दरों में उच्चावचन और अस्थिरता, (ii) आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता और (iii) विनियामक परिवेश में बदलाव।

2) (i) वर्धित परिवहन लगते, (ii) अपर्याप्त कर्मी कौशल, और (iii) भण्डार–लागत समप्रत्ययन के कारण निर्णय प्रक्रिया में जटिलता का संचार।

3) आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन संपूर्ण व्यवसायिक दर्शन लिए प्रयुक्त पद–बंध है। इसमें संमरण तन्त्र सहित सभी आन्तरिक एवं बाह्य आपूर्ति श्रृंखला प्रक्रियाएं शामिल रहती है।

इकाई 18 जनसांख्यिकीय संक्रमण और पोषण संबंधी समस्याएँ*

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 विषय–प्रवेश

18.2 भारत में जनसांख्यिकीय संक्रमण

18.3 जनसांख्यिकीय संक्रमण और जनसंख्या की आयु संरचना

18.3.1 भारतीय परिदृश्य

18.4 जनसांख्यिकीय संक्रमण और उभरती स्वास्थ्य समस्याएँ

18.4.1 कुपोषण

18.4.2 भारत में कुपोषण की व्यापकता

18.4.3 भारत में प्रजनन क्षमता और महिला स्वास्थ्य

18.5 गरीबी और खराब स्वास्थ्य परिणाम

18.5.1 क्या गरीबी स्वास्थ्य को प्रभावित करती है?

18.5.2 क्या स्वास्थ्य गरीबी को प्रभावित करता है?

18.6 सारांश

18.7 शब्दावली

18.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.9 बोध प्रश्नों के लिए उत्तर/संकेत

18.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- जनसंख्या और विकास को जोड़ने वाले सिद्धांतों की रूपरेखा तैयार कर सकें;
- 'भारत में जनसांख्यिकीय परिवर्तन' की प्रवृत्ति का वर्णन कर सकें;

*प्रोफेसर सुशील हलदर, जादवपुर विश्वविद्यालय, जादवपुर, पश्चिम बंगाल

- भारत के विशेष संदर्भ में जनसंख्या में आयु–संरचना में जनसांख्यिकीय परिवर्तन के महत्व को समझा सकें;
- कुपोषण मापने की तकनीकों का वर्णन कर सकें;
- वर्ष 1992–2021 की अवधि में भारत में कुपोषण की व्यापकता के रुझान पर प्रकाश डाल सकें;
- उन कारकों की सूची बना सकें जो 'गरीबी और स्वास्थ्य' के बीच दोहरा संबंध स्थापित करते हैं; तथा
- 'जनसांख्यिकीय संक्रमण' के संदर्भ में उभरती स्वास्थ्य समस्याओं पर चर्चा कर सकें।

18.1 विषय–प्रवेश

जनसंख्या और विकास के बीच परस्पर क्रिया का वर्णन करने वाले तीन सिद्धांत हैं, जो कि इस प्रकार हैं – (i) जनसांख्यिकीय संक्रमण का सिद्धांत, (ii) प्रजनन क्षमता का घरेलू आर्थिक सिद्धांत, और (iii) प्रजनन क्षमता का संश्लेषण मॉडल।

जनसांख्यिकीय संक्रमण का सिद्धांत किसी देश के सामाजिक–आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि में विकासवादी परिवर्तन से संबंध रखता है। इसमें जनसंख्या को आर्थिक संवृद्धि के प्रति प्रतिक्रिया दर्शाने वाले किसी अंतर्जात चर के रूप में लिया जाता है। इस सिद्धांत का पारंपरिक रूप जनसांख्यिकीय संक्रमण की अवस्थाओं को तीन चरणों में विभाजित करता है।

पहली अवस्था में (जिसे पूर्व–विकास अवस्था कहा जाता है) कोई भी अर्थव्यवस्था जनसंख्या की स्थिर स्थिति का अनुभव करती है। यह उच्च किंतु न्यूनाधिक एक समान जन्म एवं मृत्यु दर के कारण होता है। आर्थिक संवृद्धि शुरू होते ही प्रारंभिक विस्तार अवस्था (यथा, जनसांख्यिकीय संक्रमण की दूसरी अवस्था का पहला चरण) शुरू हो जाता है। यही वह अवस्था है जब आधुनिक दवाओं में सुधार के कारण मृत्यु दर में गिरावट आती है, किंतु जन्म दर पहली अवस्था की भाँति ऊँची ही बनी रहती है। अतः जनसंख्या में निवल वृद्धि अधिक होती है।

दूसरी अवस्था के अंतिम चरण में जन्म दर और मृत्यु दर दोनों में गिरावट आती है। इससे एक क्षैतिज प्राकृतिक विकास दर (NGR) वक्र बनता है, बशर्ते जन्म में गिरावट की दर और मृत्यु दर समीप हों।

तीसरी अवस्था में अपरिष्कृत मृत्यु दर (CDR) की तुलना में अपरिष्कृत जन्म दर (CBR) में तेजी से गिरावट के कारण प्राकृतिक विकास दर में गिरावट शुरू हो जाती है। यही कारण है कि प्राकृतिक विकास दर वक्र उल्टा U–आकार का होता है। जनसंख्या परिवर्तन की प्रक्रिया तब समाप्त होती है जब अपरिष्कृत जन्म दर अपरिष्कृत मृत्यु दर के बराबर हो जाती है।

ब्लैकर (1947) ने देखा कि जब अर्थव्यवस्था बहुत उन्नत विकसित प्रस्थिति में पहुँच जाती है तो गिरावट की अवस्था (यथा, NGR < 0) शुरू हो जाती है। यूरोप के एक दर्जन से अधिक देश वर्तमान में इस गिरावट की अवस्था का अनुभव कर रहे हैं।

प्रजनन क्षमता का घरेलू आर्थिक सिद्धांत (Household Economic Theory of Fertility), जिसे प्रजनन क्षमता का माँग सिद्धांत भी कहा जाता है) सन 1960 के दशक के दौरान गैरी बेकर के नेतृत्व में शिकागो–कोलंबिया विचारधारा द्वारा विकसित किया गया था। यह व्यष्टि–अर्थशास्त्रीय उपागम पर आधारित है, जो मानता है कि कोई भी दंपति जितने चाहे उतने बच्चे पैदा करेगा, जब तक कि बच्चे महँगे न पड़ते हों। यह धन और समय की अवसर लागत के संदर्भ में है।

प्रजनन क्षमता का माँग सिद्धांत परिकल्पना करता है कि बच्चों की गुणवत्ता और संख्या दोनों के लिए वास्तविक आय लोचता सकारात्मक होती है, परंतु जैसे–जैसे आय बढ़ती है, उच्च गुणवत्ता वाले बच्चों की माँग अधिक होती है। चूँकि उच्च गुणवत्ता वाले बच्चे अधिक महँगे पड़ते हैं, कम बच्चों की माँग होती है, जिसके परिणामस्वरूप बच्चों की संख्या के लिए ऋणात्मक आय लोचता होती है। विकसित अर्थव्यवस्थाओं से प्रजनन निर्णयों के माँग सिद्धांत के मूल आधार के समर्थन में काफी अनुभवजन्य साक्ष्य के बावजूद, इस मॉडल को भारत जैसे विकासशील देशों में अनुभवतः सही नहीं पाया गया है।

प्रजनन क्षमता में गिरावट का सामाजिक सिद्धांत (Social Theory of Fertility Decline) या संश्लेषण मॉडल सामाजिक विकास के परिणामस्वरूप प्राथमिकताओं में बदलाव की ओर संकेत करता है। परवर्ती सामान्य रूप से शिक्षा के विस्तार और विशेष रूप से महिला शिक्षा के संदर्भ में है। तथापि, परिवार या घरेलू स्तर पर अधिकारों और कर्तव्यों का आवंटन (यथा, संबंधियों के बीच) असमान रहता है। यह विकासशील से विकसित राष्ट्र में संक्रमण को रोकता है।

ऐसा इसलिए होता है कि किसी भी परिवार के आकार पर व्यवहार निम्नलिखित कारकों से प्रभावित होता है – (i) शिक्षा, (पप) विवाह योग्य आयु, (iii) बेटे को प्राथमिकता, (iv) शिशु मृत्यु दर, (v) महिला रोजगार, (vi) जाति, (vii) धर्म, (viii) शहरीकरण, (ix) गर्भनिरोधक संप्रभाव दर, आदि। इस प्रकार, आर्थिक कारक और सामाजिक–सांस्कृतिक कारक दोनों ही प्रजनन संबंधी निर्णयों के निर्धारक तत्वों में शामिल हैं। दूसरे शब्दों में, किसी समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक लक्ष्य मुख्य रूप से आर्थिक लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं।

जनसांख्यिकीय संक्रमण पर जनसंख्या का स्वास्थ्य अपरिवर्तनीय नहीं है। जनसांख्यिकीय संक्रमण के विभिन्न चरणों में जनसंख्या की आयु संरचना भी भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, भारत में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में वृद्धि की प्रवृत्ति देखी गई है।

सन 1950 के दशक में यह 35 वर्ष थी, परंतु वर्ष 2023 में यह 70 वर्ष देखी गई! बहरहाल, उच्चतर जीवन प्रत्याशा का अर्थ बेहतर स्वास्थ्य परिणाम नहीं है। इसे बच्चों और माताओं के निकृष्ट स्वास्थ्य परिणामों (जैसे कुपोषण, मोटापा, आदि) के संदर्भ में स्पष्ट किया गया है।

18.2 भारत में जनसांख्यिकीय संक्रमण

भारत में जनसांख्यिकीय संक्रमण की प्रथम अवस्था (यथा, उच्च जन्म और मृत्यु दर की विशेषता वाली पूर्व–आर्थिक संवृद्धि अवस्था) वर्ष 1891 से 1921 के दौरान देखा गई थी (चित्र.18.1)। इस पूर्व–संवृद्धि अवस्था के दौरान भारत में अकाल और प्लेग के कारण 2 करोड़ से भी अधिक लोग मारे गए।

दूसरी अवस्था का पहला चरण वर्ष 1921 के बाद के वर्षों में अर्थव्यवस्था में पूर्व–संवृद्धि से आधुनिक आर्थिक संवृद्धि अवस्था में परिवर्तन के साथ शुरू हुआ। इस चरण में आय में वृद्धि देखी गई, जिससे जीवन की भौतिक गुणवत्ता में सुधार हुआ। इस अवस्था में जन्म दर में गिरावट मृत्यु दर में गिरावट से काफी पीछे रही। जनसंख्या वृद्धि में महत्वपूर्ण परिवर्तन सन 1920 के दशक से निरंतर बढ़ता गया, जबकि मृत्यु दर (CDR) प्रजनन क्षमता की तुलना में ऊँची दर से घटने लगी। भारत ने वर्ष 1961 के बाद जनसांख्यिकीय संक्रमण की दूसरी अवस्था में प्रवेश किया और वर्ष 1991 तक इसी अवस्था में रहा।

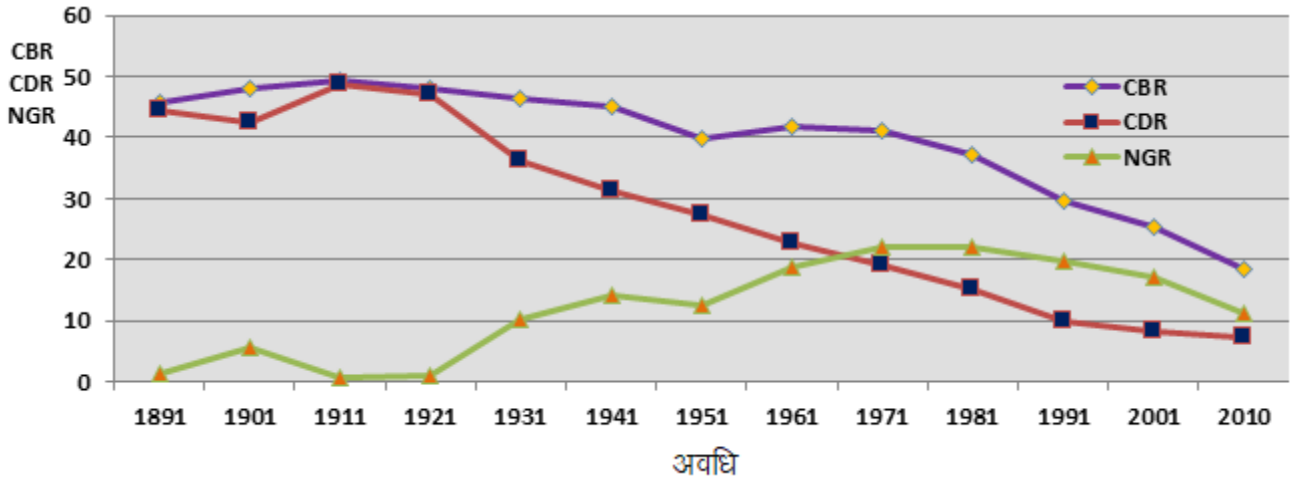

चित्र 18.1 भारत में जनसांख्यिकीय संक्रमण

स्रोत : यिअर बुक, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 2010

भारत में अपरिष्कृत जन्म दर (CBR) और अपरिष्कृत मृत्यु दर (CDR) में अंतर में गिरावट वाली अवस्था वर्ष 1960 तक जारी रही। सन 1960 के दशक के बाद ही भारत के अपरिष्कृत मृत्यु दर में तेज गिरावट आई। अतः हम दूसरी अवस्था को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं – पहला चरण 1921 से 1961 के बीच और दूसरा चरण 1961 से 1991 के बीच।

वर्ष 1921 से 1961 के दौरान, अपरिष्कृत मृत्यु दर सन 1920 के दशक में लगभग 40 (प्रति हजार) से घटकर 18 रह गई, जबकि अपरिष्कृत जन्म दर अपेक्षाकृत स्थिर, यथा लगभग 40 (प्रति हजार), रही। सन 1960 के दशक में अपरिष्कृत जन्म दर और अपरिष्कृत मृत्यु दर के बीच इस तरह के अंतर ने जनसंख्या विस्फोट की स्थिति पैदा कर दी और औसत घातीय जनसंख्या वृद्धि वर्ष 1921 में –0.03 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1961 में 1.95 प्रतिशत हो गई।

अपरिष्कृत जन्म दर वर्ष 2001 में घटकर मात्र 25.4 और वर्ष 2010 में 18.3 ही रह गई। अपरिष्कृत मृत्यु दर में भी गिरावट आई। यही दर वर्ष 2001 में 8.4 और वर्ष 2010 में 7.5 तक गिर गई। आमतौर पर जनसांख्यिकीय संक्रमण की तीसरी अवस्था तब आती है –

(i) जब आधुनिकीकरण एवं शहरीकरण के साथ औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया सशक्त हो जाती है, और

(ii) सामान्य रूप से शिक्षा एवं विशेष रूप से महिला शिक्षा व्यापक हो जाती है।

इस प्रकार, भारत 2001 के बाद के वर्षों के दौरान जनसांख्यिकीय संक्रमण की अपनी तीसरी अवस्था में प्रवेश करने में सफल रहा है।

भारत के प्रमुख राज्यों में जनसांख्यिकीय संक्रमण व्यापक रूप से भिन्न है। इसके अलावा, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच प्रजनन क्षमता (साथ ही मृत्यु दर) में गिरावट की दर भी राज्यों के बीच भिन्न–भिन्न है। वर्ष 2001 के बाद से दो दशकों के बाद केवल आंध्र प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र, पंजाब और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों ने 'जनसंख्या में शून्य प्राकृतिक वृद्धि' (प्रवासन के प्रभाव को अनदेखा करते हुए) का स्तर दर्ज किया है। आने वाले वर्षों में हरियाणा, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे अन्य राज्यों में भी जनसंख्या वृद्धि की यही स्थिर स्थिति दिखाई देने की आशा है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि चूँकि भारत की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अभी भी ग्रामीण क्षेत्र में रहती है, वास्तविक जनसांख्यिकीय संक्रमण का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों में प्रजनन क्षमता में गिरावट की दर पर निर्भर करता है। भारत में ग्रामीण प्रजनन दर अभी भी विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, असम और राजस्थान राज्यों में बहुत अधिक है।

18.3 जनसांख्यिकीय संक्रमण और जनसंख्या की आयु संरचना

ह्रासमान प्रजनन क्षमता के साथ–साथ जनसंख्या की आयु संरचना किसी भी देश को 'जनसांख्यिकीय संक्रमण' का लाभ 'जनसांख्यिकीय लाभांश' के रूप में दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ऐसा तब होता है जब आयु संरचना कार्यशील आयु वर्ग के अनुकूल होती है। जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच संबंधों पर सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि समय के साथ विकसित हुई है। उदाहरण के लिए, माल्थस की प्रारंभिक सोच कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास में बाधा डालती है, अब मान्य नहीं रह गई है। यह बात इस दृष्टि से कही जाती है कि जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सामान्यतया कार्यशील आयु की जनसंख्या के उच्च अनुपात की विशेषता वाली अर्थव्यवस्था (i) अधिक उत्पादनशील मानी जाती है, (ii) श्रम की अधिक आपूर्ति प्रदान करती है, (iii) अपनी बचत या उपभोग द्वारा अधिक योगदान देती है, आदि। इसीलिए जनसंख्या संक्रमण सिद्धांत यह मानता है कि किसी भी अर्थव्यवस्था में जनसांख्यिकीय संक्रमण के विभिन्न चरणों का अनुभव होने की संभावना होती है। इसे 'उच्च प्रजनन क्षमता एवं उच्च मृत्यु दर' के चरण से 'कम प्रजनन क्षमता एवं निम्न मृत्यु दर' के चरण में संक्रमण के लिए उत्तरदायी माना गया है।

इस संक्रमण के परिणामस्वरूप कार्यशील आयु वर्ग के पक्ष में जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्ग के समूह के आकार में परिवर्तन होने की आशा की जाती है। अधिकांश विकासशील देशों में कार्यशील आयु की जनसंख्या की भागीदारी में ऐसी वृद्धि पाई गई है। यह अवसर का एक ऐसा वातायन प्रदान करता है जिसे 'जनसांख्यिकीय लाभांश' कहा जाता है। जनसांख्यिकीय संक्रमण की विभिन्न अवस्थाओं को चित्र 18. 2 में दर्शाया गया है।

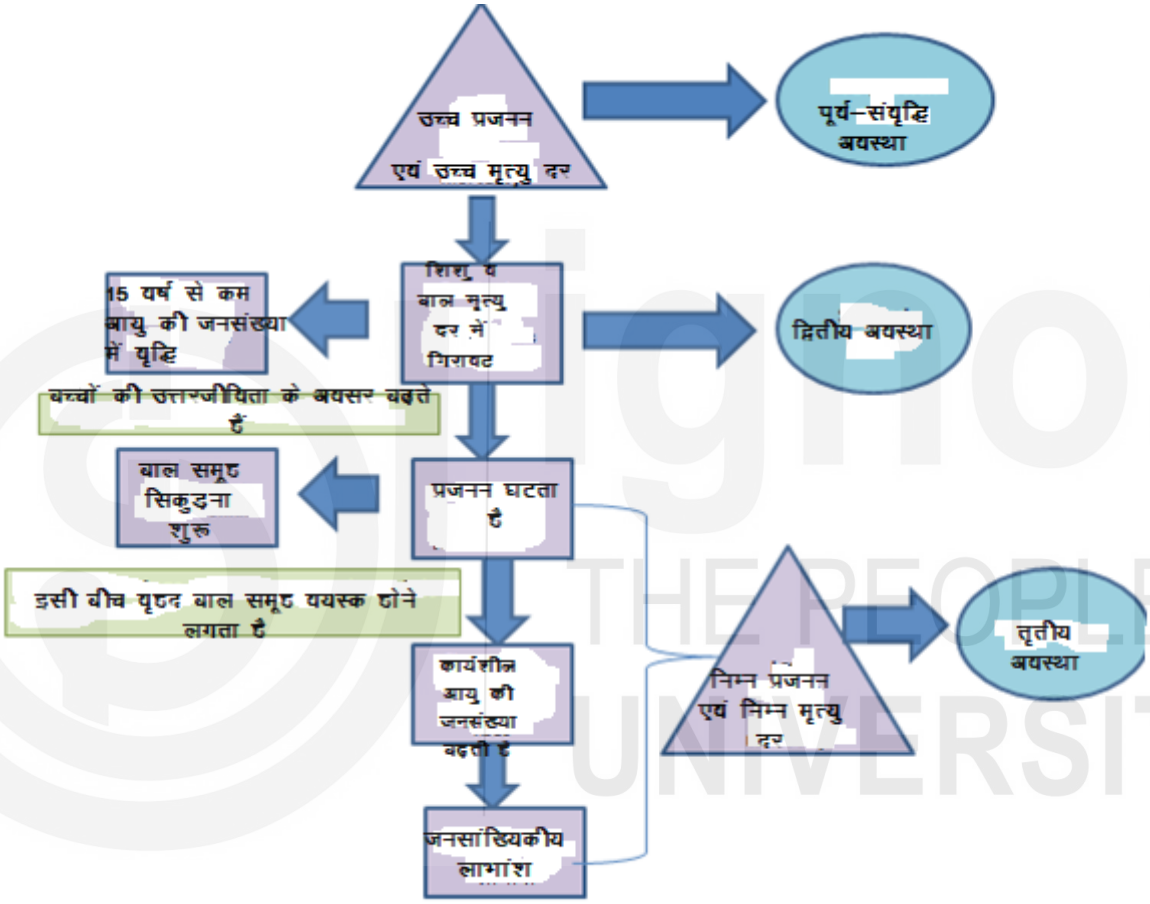

चित्र 18.2: जनसांख्यिकीय संक्रमण की अवस्थाएँ

जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था पूर्व–संवृद्धि अवस्था से संवृद्धि अवस्था की ओर बढ़ती है, स्वास्थ्य में सुधार और आधुनिक चिकित्सा के नवाचार के कारण मृत्यु दर में गिरावट देखी जाती है। मृत्यु दर में यह गिरावट शिशुओं में सबसे अधिक देखी गई है। तदनुसार, आयु वर्ग में उनके आगे बढ़ने से बाद के वर्षों में कार्यशील आयु की जनसंख्या की भागीदारी में वृद्धि होती है। चूँकि बच्चों के जीवित रहने और लंबे समय तक जीवित रहने की संभावना अधिक होती है, दम्पत्तियों में अधिक संख्या में बच्चों की चाहत रखने की संभावना कम हो जाती है। इससे एक ओर जहाँ वे अपने

बच्चों की गुणवत्ता पर अधिक निवेश करने में सक्षम हो जाते हैं, वहीं दूसरी ओर समग्र प्रजनन दर में भी गिरावट आती है।

ऐसे संतुष्ट माता–पिता अपने संसाधनों को बच्चों की गुणवत्ता पर निवेश करते हैं, यह देखते हुए कि बच्चे पैदा करने की गतिविधियाँ धन और समय की अवसर लागत दोनों के मामले में महँगी पड़ती है। किंतु निम्न मृत्यु दर के बाद प्रजनन क्षमता में यह गिरावट एक समय अंतराल के साथ आती है।

यह जनसंख्या संक्रमण के तीसरे चरण में, या मोटे तौर पर दो दशकों के बाद, या लगभग एक पीढ़ी में उत्पन्न होता है। इस अवधि के दौरान 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का प्रारंभिक समूह अपनी वयस्क आयु तक पहुँच जाता है, जिससे कार्यशील आयु की जनसंख्या (15–59) की भागीदारी में वृद्धि होती है। जैसे–जैसे प्रजनन क्षमता घटती है, बाद के बाल समूह सिकुड़ने लगते हैं, जो कि अंततोगत्वा 'जनसांख्यिकीय लाभांश' को जन्म देता है।

18.3.1 भारतीय परिदृश्य

भारत को सन 1970 के दशक के मध्य से जनसांख्यिकीय लाभ का अनुभव होना शुरू हुआ। इस समय के आसपास इसकी प्रजनन दर में गिरावट शुरू हो गई, जिससे भारत की जनसंख्या की आयु संरचना कार्यशील आयु के लोगों के पक्ष में बदल गई। अनुमान है कि वर्ष 2020 में औसत भारतीय की आयु लगभग 29 वर्ष रही होगी, जबकि चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका में औसत आयु 37 वर्ष थी।

बाल निर्भरता अनुपात में लगातार गिरावट के कारण यह प्रक्रिया वर्ष 2025 तक जारी रहने की संभावना है। समग्र निर्भरता अनुपात भी वर्ष 2025 तक गिरकर 48 तक पहुँच जाने का अनुमान लगाया गया है (तालिका 18.1)। वर्ष 2025 से इसके थोड़ा–सा बढ़कर वर्ष 2050 में 50 तक पहुँच जाने की आशा है। इसका कारण वृद्धावस्था निर्भरता अनुपात में वृद्धि है।

भारत 'जनसांख्यिकीय उपहार' का प्रयोग करने में सक्षम है या नहीं, यह एक प्रमुख चिंता का विषय है। आशा है कि भारत की जनसांख्यिकीय प्रक्रिया एक वृहदाकार और वर्धमान श्रमबल तैयार करेगी। इसके लिए कार्यशील आयु वर्ग के लिए उत्पादनशील रोजगार के अवसर सुनिश्चित करने हेतु उपयुक्त नीतियों की आवश्यकता है।

तालिका 18.1: भारत में निर्भरता अनुपात में रुझान

वर्ष	निर्भरता अनुपात	बाल निर्भरता अनुपात*	वृद्धावस्था निर्भरता अनुपात**
1950	**73**	**67**	**6**
1955	**74**	**68**	**6**
1960	**76**	**70**	**6**
1965	**78**	**72**	**6**
1970	**79**	**72**	**7**
1975	**77**	**71**	**7**
1980	**74**	**67**	**7**
1985	**72**	**65**	**7**
1990	**69**	**62**	**7**
1995	**68**	**60**	**8**
2000	**64**	**56**	**8**
2005	**60**	**51**	**8**
2025	**48**	**36**	**12**
2050	**50**	**28**	**22**

* बाल निर्भरता अनुपात = 0–14 आयु के लोगों की संख्या /15–64 आयु के लोगों की संख्या ग 100

** वृद्धावस्था निर्भरता अनुपात = 65 से ऊपर आयु के लोगों की संख्या /15–64 आयु के लोगों की संख्या ग 100

स्रोत : संयुक्त राष्ट्र का जनसंख्या प्रभाग, विश्व जनसंख्या संभावनाएँ, 2010

बोध प्रश्न –1

1) 'जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत' और 'प्रजनन क्षमता का घरेलू आर्थिक सिद्धांत' के बीच अंतर स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रजनन क्षमता में गिरावट के सामाजिक सिद्धांत के मूल कारण को इंगित करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) आप 1990 के दशक की अवधि के लिए भारत में जनसांख्यिकीय संक्रमण को किस प्रकार चित्रित करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) वर्तमान में भारत जनसांख्यिकीय संक्रमण की कौन–सी अवस्था प्राप्त कर चुका है?

.....

.....

.....

.....

.....

5) 'जनसांख्यिकीय लाभांश' से क्या तात्पर्य है? यह कैसे उत्पन्न होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) जनसांख्यिकीय लाभांश का अनुभव करने वाली अर्थव्यवस्था की दो उल्लेखनीय विशेषताएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

18.4 जनसांख्यिकीय संक्रमण और उभरती स्वास्थ्य समस्याएँ

यह तर्क दिया जा सकता है कि घटती प्रजनन क्षमता जनसांख्यिकीय उपहार की प्राप्ति के लिए एक आवश्यक शर्त तो है परंतु यह यथेष्ट शर्त नहीं है। ऐसा इसलिए है कि केवल कार्यशील आयु समूह की संख्या ही पर्याप्त आय के सृजन की गारंटी नहीं दे सकती है।

मानव संसाधन की गुणवत्ता उत्तम होनी चाहिए। कार्य समूह की यह गुणवत्ता केवल प्रभावी मानव–पूँजी निर्माण नीतियों द्वारा ही सुनिश्चित की जा सकती है। इसके लिए जनसंख्या के स्वास्थ्य एवं शैक्षिक स्थिति में सुधार की आवश्यकता होती है क्योंकि दोनों एक दूसरे के संपूरक हैं।

इस संदर्भ में हम इस पाठांश में केवल स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। अधिक विशेष रूप से, हम प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। ऐसा इसलिए है कि भविष्य की कार्यशील जनसंख्या की स्वास्थ्य स्थिति काफी हद तक (i) प्रजनन आयु समूह में माताओं की वर्तमान स्वास्थ्य स्थिति तथा (ii) 0 से 5 आयु वर्ग के बच्चों की स्वास्थ्य स्थिति पर निर्भर करती है।

इसके अलावा, बाल्यावस्था का उचित विकास काफी हद तक माँ की प्रसव–पूर्व देखभाल पर निर्भर करता है ताकि (i) बच्चे का जन्म पर्याप्त चिकित्सा पर्यवेक्षण के तहत हो तथा (ii) बाल्यकाल के दौरान उसको उचित निवारक एवं उपचारात्मक चिकित्सा देखभाल प्रदान की जाए। मातृ स्वास्थ्य में सुधार एवं विकास प्रक्रिया के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है।

यह इस तथ्य से संबंधित है कि निकृष्ट मातृ स्वास्थ्य बहुआयामी तरीकों से नकारात्मक प्रभाव डालता है, यथा – (i) बाल स्वास्थ्य, (ii) महिलाओं की उत्पादक क्षमता में कमी, तथा (iii) आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी में कमी। ये सभी संचयी रूप से प्रभावी मानव पूँजी निर्माण की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

इस प्रकार, भारत वर्तमान में जनसांख्यिकीय संक्रमण के जिस विशिष्ट चरण से गुजर रहा है, उससे उत्पन्न प्रमुख स्वास्थ्य चुनौतियाँ (i) शिशु मृत्यु दर और (ii) प्रजनन स्वास्थ्य से संबंधित हैं। भारत न केवल दुनिया में प्रति वर्ष सबसे अधिक जन्म (2.7 करोड़) का योगदान देता है, बल्कि (i) वैश्विक मातृ मृत्यु का 20 प्रतिशत, (ii) 5 वर्ष से कम उम्र की मृत्यु दर का 23 प्रतिशत और (iii) रोकी जा सकने वाली मौतों का 26 प्रतिशत भी योगदान देता है।

तदनुसार, (i) 15–49 के प्रजनन आयु वर्ग की माताओं का खराब स्वास्थ्य और (ii) बच्चों में दीर्घकालिक कुपोषण की व्यापकता भारत के लिए दो प्रमुख स्वास्थ्य चुनौतियाँ हैं। ये दोनों ही कारक संयुक्त रूप से प्रभावी मानव पूँजी निर्माण की दीर्घकालिक प्रक्रिया को बाधित करते हैं।

पुनश्चः, ऐसा इसलिए है कि (i) माताओं का स्वास्थ्य नवजात शिशुओं के स्वास्थ्य को निर्धारित करता है, (ii) स्वस्थ बच्चे प्रभावी ढंग से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और देश के लिए संपत्ति बन सकते हैं तथा (iii) अस्वस्थ एवं कुपोषित बच्चे मानव पूँजी संचय की प्रक्रिया में मदद नहीं कर सकते हैं।

18.4.1 कुपोषण

पोषण संबंधी स्थिति के दो महत्वपूर्ण संकेतक हैं – (i) शरीर का आकार और (पप) शरीर की संरचना। परवर्ती शरीर के समग्र कार्य को निर्धारित करता है। कुपोषण का सबसे व्यापक रूप से प्रयोग किया जाने वाला माप मानवदेहमिति संबंधी है। इसमें निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखा जाता है –

(i) जन्म के समय कम वजन,

(ii) वृद्धिरोध (यथा, 0–5 साल के बच्चों में कम ऊँचाई) और

(iii)कमजोर होना (यथा, 0–5 साल के बच्चों में कम वजन)।

जन्म के समय कम वजन का संकेत 2.5 किलोग्राम से कम वजन वाले बच्चों के प्रतिशत से होता है। वृद्धिरोध और अपक्षय के लिए गणना किए गए Z समंक के आधार पर एक वर्गीकृत प्राधार अपनाया जाता है। Z समंक की गणना एक निश्चित आयु के लिए बच्चे की ऊँचाई और अंतर्राष्ट्रीय मानक के एक सुपोषित बच्चे के लिए संबंधित मान के साथ लिंग पर विचार करके की जाती है। इसी प्रकार अपक्षय की भी गणना की जाती है।

सभी तीन कारकों (यथा, जन्म के समय कम वजन, वृद्धिरोध और अपक्षय) के समग्र माप के रूप में, 0–5 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों के कम वजन का प्रतिशत लिया जाता है। Z समंक के रूप में गणना की जाती है, यह बच्चे के वजन के लिए मानकीकृत मान को निर्दिष्ट करता है।

यदि किसी बच्चे का Z समंक –2 से कम हो तो वृद्धिरोध को 'आयु के अनुसार कम ऊँचाई' के रूप में परिभाषित किया जाता है। साथ ही, –3 से नीचे का कोई भी Z समंक 'गंभीर रूप से वृद्धिरुद्ध' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इसी प्रकार, यदि किसी बच्चे का Z समंक –2 से नीचे हो तो अपक्षय को 'ऊँचाई की तुलना में कम वजन' के रूप में परिभाषित किया जाता है।

इस संबंध में –3 से नीचे का कोई भी Z समंक 'गंभीर रूप से क्षीणकाय' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इसी प्रकार, यदि किसी बच्चे से संबधित Z समंक –2 से नीचे हो तो उसे 'कम वजन' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। इस संबंध में –3 से नीचे का कोई भी Z समंक 'गंभीर रूप से दुबला–पतला' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। 0 से 5 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चे के Z समंक की गणना के लिए ऊँचाई, वजन और आयु को क्रमशः सेंटीमीटर, किलोग्राम और महीनों में मापा जाता है। शरीर द्रव्यमान सूचकांक (BMI) के परिकलित मान के आधार पर ही किसी भी वयस्क या किशोर को कुपोषित के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

$$\text{शरीर द्रव्यमान सूचकांक} = \text{वजन} / \text{ऊँचाई}$$

शरीर द्रव्यमान सूचकांक के लिए वजन किलोग्राम में और ऊँचाई मीटर में मापी जाती है। शरीर द्रव्यमान सूचकांक का व्यापक रूप से किसी व्यक्ति की समग्र स्वास्थ्य स्थिति के संकेतक के रूप में उपयोग किया जाता है।

अधिक विशिष्ट रूप से, शरीर द्रव्यमान सूचकांक का प्रयोग यह वर्गीकृत करने के लिए किया जाता है कि कोई व्यक्ति कम वजन वाला है, सामान्य वजन वाला है, अधिक वजन वाला है या फिर मोटा है। यदि शरीर द्रव्यमान सूचकांक 16 से कम हो तो व्यक्ति को 'गंभीर कुपोषण' से पीड़ित कहा जाता है। यदि शरीर द्रव्यमान सूचकांक 16 और 18.5 के बीच हो तो इसे 'मध्यम कुपोषित' के रूप में परिभाषित किया जाता है।

यदि शरीर द्रव्यमान सूचकांक 18.5 और 25 के बीच हो तो उसे सामान्य माना जाता है। यदि किसी व्यक्ति का शरीर द्रव्यमान सूचकांक 25 से अधिक हो तो उसे अधिक वजन वाला कहा जाता है। 25 से अधिक उच्च शरीर द्रव्यमान सूचकांक कई गंभीर बीमारियों या उच्च रक्तचाप, टाइप II मधुमेह, हृदय रोग, आघात, जीवन की निम्न गुणवत्ता, आदि स्वास्थ्य स्थितियों के जोखिम को बढ़ा देता है। इनके अलावा, रक्त में ग्राम प्रति लीटर (g/L) के रूप में व्यक्त हीमोग्लोबिन के मान के आधार पर महिलाओं को रक्ताल्पता के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

रक्ताल्पता को परिभाषित करने के लिए सीमाएँ इस प्रकार हैं – (i) गैर–गर्भवती महिलाओं के लिए 120 और (ii) गर्भवती महिलाओं के लिए 110 का मान। रक्ताल्पता की स्थिति (i) कम आयरन सेवन, (ii) शरीर द्वारा आयरन का अपर्याप्त अवशोषण, (iii) रुग्णता अथवा (iv) अत्यधिक रक्त हानि के कारण होती है। गंभीर प्रोटीन–ऊर्जा कुपोषण और विटामिन B12 की कमी से भी रक्ताल्पता होती है।

18.4.2 भारत में कुपोषण की व्यापकता

तालिका 18.2 वर्ष 1993–2021 की अवधि के लिए भारत में कुपोषण की घटनाओं पर आँकड़े प्रस्तुत करती है। इसे वृद्धिरोध, अपक्षय और कम वजन वाले बच्चों (राष्ट्रीय स्तर पर 0 से 5 आयु वर्ग के) के अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष 1993–2021 की अवधि में इन तीनों संकेतकों के मानों में लगातार गिरावट देखी जाती रही। तथापि, वर्ष 1999–2021 की पूरी अवधि में रक्ताल्पता से पीड़ित महिलाओं का प्रतिशत लगातार 50 प्रतिशत से अधिक रहा है। उप–राष्ट्रीय स्तर पर, भारत में स्वास्थ्य परिणामों की क्षेत्रीय असमानता काफी गंभीर है। इसे तालिका 18.3 में उत्तर प्रदेश और केरल के दो परस्पर तुलनीय राज्यों को लेकर दर्शाया गया है। सामाजिक रूप से उन्नत राज्य होने के बावजूद, केरल में वर्ष 2021 में दो–तिहाई से अधिक महिलाएँ रक्ताल्पता से पीड़ित रहीं।

तालिका 18.2: भारत में बच्चों और महिलाओं में कुपोषण की व्यापकता

राष्ट्रीय औसत, भारत (%)					
Health Parameters	**NFHS-1 (1992-93)**	**NFHS-2 (1998-99)**	**NFHS- 3 (2005-06)**	**NFHS-4 (2015-16)**	**NFHS-5 (2019-21)**
वृद्धिरुद्ध (0-5 Yrs.)	**52**	**45.5**	**44.9**	**38.4**	**35.5**
क्षीणकाय (0-5 Yrs.)	**17.5**	**15.5**	**22.9**	**21**	**19.3**
कम वजन (0-5 Yrs.)	**53.4**	**47**	**40.4**	**35.8**	**32.1**
महिलाएँ (15-49) रक्ताल्पता से पीड़ित		**51.8**	**56.2**	**50.8**	**53.8**

स्रोत : NFHS डेटा, आईआईपीएस, मुंबई

तालिका 18.3: केरल और उत्तर प्रदेश में बच्चों और महिलाओं में कुपोषण की व्यापकता (%)

	NFHS 1		**NFHS 2**		**NFHS 3**		**NFHS 4**		**NFHS 5**	
कुपोषण सूचक	केरल	यूपी	केरल	यूपी	केरल	यूपी	केरल	यूपी	केरल	यूपी
वृद्धिरुद्ध	**27.4**	**59.2**	**21.9**	**55.5**	**24.5**	**56.8**	**19.7**	**46.3**	**23.4**	**39.7**
क्षीणकाय	**11.6**	**16.1**	**11.1**	**11.1**	**15.9**	**14.8**	**15.7**	**17.9**	**15.8**	**17.3**
कम वजन	**28.5**	**59**	**26.9**	**51.7**	**22.9**	**42.4**	**16.1**	**39.5**	**19.7**	**32.1**
महिलाएँ (15-49) रक्ताल्पता से पीड़ित			**22.7**	**48.7**	**32.8**	**49.9**	**34.3**	**52.4**	**36.3**	**50.4**

स्रोतः: NFHS डेटा,, IIPS, मुंबई

अधिक गंभीर रूप से, केरल में रक्ताल्पता से पीड़ित महिलाओं का प्रतिशत 22.7 (1999 में) से लगातार बढ़कर 36.3 (2021 में) हो गया। इससे ज्ञात होता है कि बेशक सामाजिक प्रगति सहज हो, वह अकेले पर्याप्त नहीं होती। भारत में कुपोषण की समस्या से निपटने के लिए अधिक संकेंद्रित प्रयासों की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न –2

1) मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य विषयक नीति पर ध्यान केंद्रित करना क्यों आवश्यक है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) वृद्धिरोध और अपक्षय को कैसे परिभाषित किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) शरीर द्रव्यमान सूचकांक क्या है? यह किस प्रकार उपयोगी है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) भारत में कुपोषण की सीमा पर व्यापक रुझान क्या हैं? इसका नीतिगत निहितार्थ क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

18.5 गरीबी और खराब स्वास्थ्य परिणाम

विश्व की कुल जनसंख्या में भारत की भागीदारी लगभग 17.5 प्रतिशत और बहुआयामी गरीबों की 28 प्रतिशत है। आठ भारतीय राज्य जो गरीबों की संख्या में सबसे अधिक योगदान दे रहे हैं, इस प्रकार हैं – बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा, राजस्थान और पश्चिम बंगाल।

वर्ष 2022 का वैश्विक भूख सूचकांक (GHI) भारत को 121 देशों में से 107वें स्थान पर रखता है। विश्व में होने वाली बीमारियों में भारत का योगदान पाँचवाँ है।

भारत जनसांख्यिकीय परिवर्तन के जिस विशिष्ट चरण से गुजर रहा है, उससे उत्पन्न प्रमुख स्वास्थ्य चुनौतियाँ निम्नलिखित बातों से संबंधित हैं – (i) शिशु मृत्यु दर, (ii) बाल कुपोषण, (iii) रक्ताल्पता से पीड़ित माताएँ और (iv) अपर्याप्त प्रजनन स्वास्थ्य सेवाएँ। निम्न आय खराब स्वास्थ्य का कारण बनती है और खराब स्वास्थ्य, बदले में, निम्न आय का कारण बनता है।

इस प्रकार यह करणीय संबंध कारण का एक दोतरफा चक्र है, जो कि एक जाल उत्पन्न करता है जिसे स्वास्थ्य–गरीबी जाल (health-poverty trap) कहा जाता है। एक जाल दुखांत परिणामों वाला होता है क्योंकि (i) गरीबों के स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों से निपटे बिना गरीबी को खत्म नहीं किया जा सकता है और (ii) स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों को तब तक पूरी तरह से हल नहीं किया जा सकता है जब तक गरीबी खत्म नहीं हो जाती। दूसरे शब्दों में, खराब स्वास्थ्य और गरीबी एक दुष्चक्र का निर्माण करते हैं जिससे निकलना बेहद चुनौतीपूर्ण है।

18.5.1 क्या गरीबी स्वास्थ्य को प्रभावित करती है?

ऐसी अनेक प्रणालियों हैं जिनके माध्यम से गरीबी स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। पहली और सबसे स्पष्ट बात यह है कि गरीब लोगों के पास स्वास्थ्य देखभाल खरीदने के लिए आवश्यक भौतिक संसाधन (यथा, धन) नहीं होता। वे बीमारी प्रकट होने से पहले निवारक देखभाल सेवाओं का व्यय वहन नहीं कर सकते हैं और न ही संक्रमित होने के बाद वे डॉक्टरों एवं दवाओं का खर्च उठा पाते हैं। अपर्याप्त कैलोरी एवं प्रोटीन के सेवन के कारण उनके कुपोषित और अस्वस्थ होने की भी अधिक संभावना होती है। परिणामस्वरूप, उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी होने की संभावना अधिक होती है और इसलिए वे संक्रामक रोगों की चपेट में आ जाते हैं।

दूसरे, चूँकि गरीब लोग दवाएँ नहीं खरीद सकते, यह गरीब लोगों की बीमारियों के लिए अनुसंधान एवं विकास (R & D) में निवेश करने के लिए दवा कंपनियों के प्रोत्साहन को कम कर देता है।

तीसरे, गरीबों के साफ पानी और स्वच्छता के रहित भीड़भाड़ वाले इलाकों में रहने की अधिक संभावना होती है। परिणामस्वरूप, उनमें संक्रामक रोगों से ग्रस्त होने की प्रवृत्ति अधिक होती है।

चौथे, गरीबों के डॉक्टरों और अस्पतालों से दूर रहने की संभावना अधिक होती है, जिससे समस्या आने पर मदद लेना बहुत महँगा पड़ता है। इस प्रकार, जब गरीब लोग खराब स्वास्थ्य से पीड़ित होते हैं तो उनके उपचार न किए जाने की संभावना अधिक होती है।

पाँचवे, गरीबों के पास कम शिक्षा होने की अधिक संभावना होती है और इसलिए वे डॉक्टरों या अन्य प्रकार की मदद लेने की आवश्यकता नहीं समझते हैं। यह व्यापक रूप से ज्ञात है कि बाल मृत्यु दर के प्रमुख निर्धारक तत्वों में से एक माताओं की साक्षरता है।

छठें, गरीब व अशिक्षित युवतियाँ अमीर व ताकतवर पुरुषों के साथ यौन संबंध बनाने से इंकार करने में असमर्थ होती हैं, जिससे वे यौन संचारित रोग/एड्स (STDs/AIDS) जैसे यौन रोग फैलने की चपेट में आ जाती हैं।.

18.5.2 क्या स्वास्थ्य गरीबी को प्रभावित करता है?

स्वास्थ्य और शिक्षा मानव पूँजी निर्माण की दो महत्वपूर्ण निविष्टियाँ हैं जो आर्थिक विकास में सहायता करने और गरीबी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये एक दूसरे के संपूरक होती हैं। तदनुसार, मानव पूँजी उत्पादकता से जुड़ी निविष्टि है।

अनुभवजन्य साक्ष्य से ज्ञात होता है कि लोगों की आय व उसकी वृद्धि मूल रूप से उस क्षेत्र की समग्र स्वास्थ्य स्थिति से प्रभावित होती है जिसमें वे रहते हैं। यह एक जाल के अस्तित्व की ओर भी संकेत करता है, यथा –

(i) गरीब अर्थव्यवस्थाएँ कम संवृद्धि करती हैं क्योंकि उनका स्वास्थ्य खराब होता है और

(ii) उनका स्वास्थ्य खराब होता है क्योंकि वे गरीब होते हैं।

अनुमान है कि विश्व भर में लगभग 160 करोड़ लोग बहुआयामी गरीबी में रह रहे हैं और उनमें से लगभग 44 करोड़ आठ बड़े भारतीय राज्यों बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा, राजस्थान और पश्चिम बंगाल में हैं।

दूसरे, अस्वस्थ लोगों का शरीर कम उत्पादनशील होता है। इसलिए उनके द्वारा समान घंटों का काम कम उत्पादन देता है। रुग्ण बच्चों का वजन कम होता है, वे छोटे होते हैं और उनकी मस्तिष्क क्षमता भी कम होती है। आयरन एवं विटामिन A की कमी का संबंध मस्तिष्क की शक्ति में कमी से पाया जाता है। यह सब गरीबों की उत्पादकता और पारिश्रमिक को कम करता है। अपनी जीवन प्रत्याशा की छोटी अवधि के कारण गरीब व्यक्ति कम वर्ष काम करते हैं और इसलिए जीवनकाल में कम पारिश्रमिक अर्जित करते हैं।

तीसरे, स्वास्थ्य किसी भी परिवार, समाज और देश की आय की उत्पादकता एवं संवृद्धि को प्रभावित करता है। यह, बदले में, गरीबों की शिक्षा एवं प्रशिक्षण को प्रभावित करता है। रुग्ण बच्चे प्रायः स्कूल छोड़ देते हैं। इस प्रकार उन्हें कम शिक्षा मिलती है, जो कि भविष्य में उन्हें और गरीब बना देती है।

चौथे, जो माता–पिता यह जानते हैं कि उनके बच्चों की जल्दी मृत्यु होने की संभावना है, वे कई बच्चे पैदा करते हैं ताकि अंत में कुछ वयस्क वंशज पैदा हो सकें। उनके बजट की कमी के कारण प्रत्येक बच्चे को समर्पित संसाधनों की मात्रा कम हो जाती है। परिणामस्वरूप, प्रत्येक बच्चे तक कम शिक्षा एवं मानव पूँजी ही पहुँचती है। जिस हद तक शिक्षा आर्थिक विकास की प्रक्रिया का एक अनिवार्य निर्धारक तत्व है, ख़राब स्वास्थ्य उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

पाँचवे, स्वास्थ्य स्कूली शिक्षा के प्रतिफल के माध्यम से उच्च आर्थिक विकास की ओर ले जाता है। किंतु गरीबों की कम जीवन प्रत्याशा स्कूली शिक्षा के लाभ की दर को कम कर देती है। परिणामस्वरूप, शिक्षा के प्रति प्रोत्साहन कम हो गया है। छठे, स्वास्थ्य शिक्षा से सीधे जुड़ाव के माध्यम से गरीबी को प्रभावित करता है। माता–पिता की असमय मृत्यु से बच्चों की शिक्षा पर स्वास्थ्य का प्रभाव पड़ता है।

शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक, स्कूल, अध्ययन सामग्री, छात्र का समय, माता–पिता का समय और पौष्टिक भोजन जैसी अनेक निविष्टियों की आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण निवेश माता–पिता का समय है। मार्गदर्शन, वित्तीय सुरक्षा, भावनात्मक एवं भौतिक समर्थन और माता–पिता द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान, बच्चों को शिक्षित करने की प्रक्रिया के प्रमुख निर्धारक तत्व हैं। एक बार वंचित होने पर ऐसे बच्चे अनौपचारिक क्षेत्र में उन अकुशल श्रमिकों की श्रेणी में शामिल होने के

लिए बाध्य हो जाते हैं जहाँ पारिश्रमिक कम होता है। परिणामस्वरूप, वे गरीबी में फँसकर रह जाते हैं।

अंततोगत्वा, बहुत से गरीब लोग उन गरीब देशों में रहते हैं जहाँ अपर्याप्त सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ होती हैं। निजी बीमा प्राप्त करना कठिन होता है, जिसे किसी भी स्थिति में गरीब लोग वहन नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार उन्हें प्रायः किसी गंभीर या लाइलाज बीमारी से पीड़ित परिवार के किसी सदस्य को ठीक करने के लिए अपनी जीवन भर की बचत खर्च करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। कभी–कभी यह बच्चों को स्कूल छोड़ देने और श्रमबल में प्रवेश करने के लिए बाध्य कर देता है। इस प्रकार, स्वास्थ्य समस्या अंततः परिवार की संपत्ति और भविष्य में आय अर्जित करने की क्षमता को प्रभावित करती है।

बोध प्रश्न –3

1) भारत के जनसांख्यिकीय संक्रमण की वर्तमान स्थिति से उत्पन्न प्रमुख स्वास्थ्य चुनौतियों की सूची बनाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) 'स्वास्थ्य–गरीबी जाल' पदबंध को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

18.6 सारांश

समग्र स्तर पर भारत वर्तमान में जनसांख्यिकीय संक्रमण के तीसरी अवस्था में है। किंतु, उप–राष्ट्रीय स्तर पर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और झारखंड जैसे बड़े राज्य अभी भी जनसांख्यिकीय संक्रमण की दूसरी अवस्था के पहले चरण में ही हैं।

यदि इन राज्यों को जनसांख्यिकीय लाभांश का लाभ उठाने से न चूकना हो तो यह तथ्य राज्य स्तर पर आवश्यक नीतिगत संकेंद्रण की ओर संकेत करता है। जनसांख्यिकीय लाभांश का लाभ उठाना काफी हद तक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार जैसे प्रमुख राज्यों की प्रजनन क्षमता में गिरावट की दर पर भी निर्भर करता है। तथापि, इन राज्यों में प्रचलित सामाजिक वातावरण छोटे परिवार के मानदंडों के लिए अनुकूल नहीं है। इसलिए, उनकी प्रजनन क्षमता को तेजी से कम करने के लिए एक ओर स्वास्थ्य एवं शिक्षा में निवेश बढ़ाना और दूसरी ओर महिलाओं को सशक्त बनाना आवश्यक है।

उत्तम स्वास्थ्य समग्र कल्याण का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह मानव पूँजी के स्तर को बढ़ाता है जो अकेले ही व्यक्तिगत उत्पादनशीलता और तदनुसार आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव डालने की क्षमता रखता है। बेहतर स्वास्थ्य अक्षमता, दुर्बलता और बीमारी के कारण बर्बाद हुए दिनों की संख्या को कम करके कार्यबल की उत्पादनशीलता बढ़ाता है। इससे बेहतर वेतन वाले काम पाने के अवसर बढ़ जाते हैं और बदले में बेहतर पोषण का लाभ मिलता है।

यह स्वयं (i) उन्नत संज्ञानात्मक विकास, (ii) स्कूल में नामांकन, (iii) स्कूल में लगातार उपस्थिति और (iv) वयस्क उत्पादनशीलता के संदर्भ में प्रकट होता है। इसके परिणामस्वरूप संसाधनों में बचत होती है, जो कि अन्यथा बीमारियों और कुपोषण से संबंधित अन्य समस्याओं से लड़ने में खर्च हो जाती।

अतएव, भारत के लिए प्रमुख नीतिगत चुनौती उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और उड़ीसा जैसे पिछड़े राज्यों के बच्चों में कुपोषण की व्यापक घटनाओं से निपटना है। बच्चों में कुपोषण का बड़ा अनुपात होने के कारण 'निम्न स्तरीय स्वास्थ्य जाल' का अस्तित्व समावेशी विकास के लिए एक बड़ी बाधा है। इन पाँच प्रमुख राज्यों में भारत की लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। अतः भारत के भविष्य के जनसांख्यिकीय लाभांश का 50 प्रतिशत से अधिक लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि ये प्रमुख राज्य अपने भविष्य के मानव पूँजी निर्माण को कैसे आकार देते हैं। इसी कारण जनसांख्यिकीय प्रतिफल का लाभ उठाने के लिए विशेष रूप से इन पिछड़े राज्यों (स्वास्थ्य के संबंध में) में मानव पूँजी में एक बड़े निवेश की नितांत आवश्यकता है।

18.7 शब्दावली

जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि दरः प्राकृतिक विकास दर (NGR) किसी जनसंख्या में जन्म और मृत्यु की संख्या के बीच का अंतर होता है। प्राकृतिक वृद्धि की दर अपरिष्कृत जन्म दर और अपरिष्कृत मृत्यु दर के बीच का अंतर होता है। सामान्यतया, जनसांख्यिकीय संक्रमण के विभिन्न चरणों पर अंकित किए जाने पर प्राकृतिक विकास दर वक्र उल्टा U आकार का होता है।

जनसांख्यिकीय लाभांशः जनसांख्यिकीय संक्रमण के कारण जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गों के समूह के आकार में परिवर्तन होता है, जो कि कार्यशील आयु समूह के पक्ष में झुक जाता है। अधिकांश विकासशील देशों में कार्यशील आयु की जनसंख्या की भागीदारी में वृद्धि जनसांख्यिकीय संक्रमण के परिणामस्वरूप प्रजनन दर में गिरावट के कारण होती है। यह अवसर का एक वातायन प्रदान करता है, जिसे 'जनसांख्यिकीय लाभांश' कहा जाता है। संक्षेप में, कार्यशील आयु की जनसंख्या (15–59) की बढ़ती भागीदारी को 'जनसांख्यिकीय लाभांश' कहा जाता है।

निर्भरता अनुपात : यह उन लोगों का आयु–जनसंख्या अनुपात है जो सामान्यतः श्रमबल में नहीं होते हैं (जैसे कि 0–14 और 60 आयु वर्ग के लोग)।

18.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Bloom, David E. (2011), 'Population Dynamics in India and Implications for Economic Growth', Programme on the Global Demography of Ageing, Working Paper No. 65, January.
2) Bhattacharya G, Haldar SK (2015), Does Demographic Dividend Yield Economic Dividend?, India, A Case Study, Economics Bulletin, 35(2):1274–1291.
3) World Health Organization (2022): Report on Out of Pocket Healthcare Expenditure in India.

18.9 बोध प्रश्नों के लिए उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न –1

1) पूर्ववर्ती अर्थव्यवस्था के तीन–अवस्था संक्रमण को इंगित करता है, जो कि इसके बदलती या घटती जन्म एवं मृत्यु दरों के आसपास केंद्रित होता है। इस सिद्धांत के अनुसार, जैसे–जैसे विकास गति पकड़ता है, अपरिष्कृत मृत्यु

दर और अपरिष्कृत जन्म दर दोनों लगभग बराबर हो जाएँगे, जिससे एक क्षैतिज प्राकृतिक विकास दर वक्र बन जाएगा। प्रजनन क्षमता का घरेलू आर्थिक सिद्धांत बच्चों की मात्रा और गुणवत्ता की बदलती आय लोच पर केंद्रित है। इसकी परिकल्पना है कि जैसे–जैसे आय बढ़ती है, उच्च गुणवत्ता वाले बच्चों की माँग अधिक होती है।

2) यह इंगित करता है कि किसी समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक लक्ष्य बड़े पैमाने पर आर्थिक लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं।

3) वर्ष 1921 तक भारत जनसांख्यिकीय संक्रमण की पूर्व–विकास अवस्था में था। वर्ष 1921 और 1961 के बीच प्रजनन दर की तुलना में मृत्यु दर में तेजी से गिरावट आई। वर्ष 1961 और 1991 के बीच भारत ने जनसांख्यिकीय संक्रमण की दूसरी अवस्था में प्रवेश किया, जिससे आय में वृद्धि हुई और जीवन की भौतिक गुणवत्ता में सुधार हुआ।

4) भारत की अपरिष्कृत मृत्यु दर 1960 के दशक में 18 प्रति हजार से घटकर वर्ष 2010 में 7.5 हो गई। इसकी अपरिष्कृत जन्म दर भी 1960 के दशक में लगभग 40 से घटकर 2010 में 18.3 रह गई। भारत अब जनसांख्यिकीय संक्रमण की तीसरी अवस्था में है, जबकि औद्योगीकरण और महिला शिक्षा दोनों ने अपना महत्व और प्रभाव बनाए रखा है।

5) जनसांख्यिकीय लाभांश जनसंख्या की आयु–संरचना को इंगित करता है, जिसमें कार्यशील आयु समूह का हिस्सा सबसे अधिक है। यह जन्म दर और मृत्यु दर में एक साथ गिरावट के परिणामस्वरूप होता है। चूँकि मृत्यु दर में कमी का अधिकांश बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, उच्च आयु वर्ग में उनका संक्रमण कार्यशील आयु वर्ग को बढ़ा देता है। इस प्रकार,

6) (i) दंपत्तियों की अपने बच्चों की गुणवत्ता पर अधिक निवेश करने की क्षमता और (ii) जनसंख्या की समग्र प्रजनन दर में गिरावट।

बोध प्रश्न –2

1) मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के बीच संबंध बहुआयामी होते है। नीतिगत प्रबलता की कमी भविष्य की मानव पूँजी–निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करती है। इसकी कमी के परिणामस्वरूप निम्नलिखित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है – (i) बच्चों का स्वास्थ्य, (ii) महिलाओं की प्रजनन क्षमता, (iii) आर्थिक गतिविधियों में कम भागीदारी, आदि।

2) वृद्धिरोध को आयु के हिसाब से कम लंबाई वाले बच्चों के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया जाता है। अपक्षय को आयु के हिसाब से कम वजन वाले

बच्चों के प्रतिशत के रूप में परिभाषित किया जाता है। दोनों को अंतरराष्ट्रीय मानक के स्वस्थ बच्चे के संबंध में मापा जाता है। इस प्रकार मापे गए Z के मानकीकृत गणना मान का प्रयोग कुपोषित बच्चों के अनुपात को निर्धारित करने के उद्देश्य से किया जाता है।

3) शरीर द्रव्यमान सूचकांक एक समग्र समंक है जिसे 'वजन से ऊँचाई–वर्ग' के अनुपात के रूप में लिया जाता है। इसके लिए वजन किलोग्राम में और ऊँचाई मीटर में मापी जाती है। यदि किसी वयस्क व्यक्ति का शरीर द्रव्यमान सूचकांक 16.5 से कम हो तो उसको कुपोषित कहा जाता है। यदि किसी का शरीर द्रव्यमान सूचकांक 16.5 और 18.5 के बीच हो तो उसे थोड़ा–बहुत कुपोषित माना जाता है। किसी व्यक्ति के स्वस्थ रहने के लिए शरीर द्रव्यमान सूचकांक 18.5 से 25 के बीच होना चाहिए।

4) वर्ष 1993–2021 की अवधि में भारत में रक्ताल्पता से पीड़ित महिलाओं का प्रतिशत लगातार 50 प्रतिशत से ऊपर रहा। यहाँ तक कि सबसे प्रगतिशील राज्य केरल में भी रक्ताल्पता से पीड़ित महिलाओं की प्रतिशतता 30–40 प्रतिशत के बीच रही है। उत्तर प्रदेश राज्य के लिए यह 50 प्रतिशत के समीप है। यह भारत में कुपोषण की क्षेत्रीय असमानता में अंतर को दर्शाता है। यह देश में मानव पूँजी निर्माण की प्रक्रिया पर अपने प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए संकेंद्रित नीतिगत हस्तक्षेप की ओर ध्यान आकृष्ट करता है।

बोध प्रश्न –3

1) (i) शिशु मृत्यु दर, (ii) बाल कुपोषण, (iii) रक्ताल्पता से पीड़ित माताएँ और (iv) निकृष्ट प्रजनन स्वास्थ्य सेवाएँ।

2) निम्न आय और खराब स्वास्थ्य दो ऐसे पहलू हैं जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यह कार्य–कारण का ऐसा दोतरफा चक्र है जो एक जाल उत्पन्न करता है, जिसे 'स्वास्थ्य–गरीबी जाल' कहा जाता है।

इकाई 19 व्यवहारवादी अर्थशास्त्र और विकास*

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 विषय–प्रवेश

19.2 व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र क्या है?

19.3 व्यवहारवादी स्वास्थ्य/स्वस्थता

19.4 व्यवहारवादी शिक्षा

19.5 पर्यावरण मित्र व्यवहार में व्यवहारवादी अर्थशास्त्र

19.5.1 पर्यावरण पर व्यवहारवादी अंतर्दृष्टियां

19.5.2 पर्यावरण मित्र व्यवहार हेतु नीतिगत निहितार्थ

19.6 सारांश

19.7 शब्दावली

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

19.9 बोध प्रश्नों के लिए उत्तर/संकेत

19.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य होंगे कि–

- वर्णन कि व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र किस रूप में परंपरागत विकास अर्थशास्त्र में भिन्न है;
- व्यवहारवादी अर्थशास्त्र प्रयुक्त संकल्पनाओं की रूपरेखा का निर्माण;
- यह वर्णन कि योग स्वास्थता पर पूर्वापायी व्यय क्यों नहीं करते;
- पूर्वोपायी स्वास्थ्य पर वैयक्ति निवेश में सुधार लाने के उपायों का वर्णन;
- शिक्षा पर निजी व्यय को लेकर मुख्य चिन्ताओं का स्पष्टीकरण और उनके निवारण की व्याख्या;

*डॉ. विजेता बनवारी, एसओएसएस, इग्नू

- लोकचयन द्वारा पर्या–प्रभावों को लेकर व्यवहारवादी अंतर्दृष्टियां प्रदान करने वाले कारकों का निरूपण; और
- लोक व्यवहार को पर्यावरण मित्र बनाने के लिए नीतिगत सुझाव देना।

19.1 विषय–प्रवेश

परंपरागत अर्थशास्त्र व्यक्तियों को तर्कशील निर्णयकर्ता मानता रहा है। इसका अर्थ है कि वे व्यक्ति अपने स्वहित में उन निर्णयों की लागतों एवं हितलाभों पर विचार करते हैं। किन्तु धीरे–धीरे यह अनुभूति होने लगी है कि वे निर्णयकर्ता केवल स्वहित प्रेरित नहीं होते बल्कि मानसिक प्रतिमान और उनके अपने सामाजिक संजालों को भी निर्णय प्रक्रिया पर प्रभाव रहता है। व्यवहारवादी अर्थशास्त्र ने व्यक्तियों के इस प्रकार के गैरतर्कशील व्यवहार को समझने में योगदान दिया है। इसी से एक अध्ययन प्रशाखा ''व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र'' का उदय हुआ है।

व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र व्यक्ति की निर्णय प्रक्रिया पर मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के प्रभावों की समीक्षा करता है। ये इन दो प्रश्नों के उत्तरों की तलाश करता हैः (i) वरीयता की रचना किस प्रकार होती है? और (ii) निर्णय प्रक्रिया में व्यवहार अभिनतियों के प्रश्नों के समंजन की समस्या का निदान कैसे होता है? यह धारणा यही है कि (i) व्यक्ति कैसे सोचते हैं तथा (ii) सामाजिक संसर्ग जान लेना विकास नीतियों की अभिकल्पना करने और उन्हें क्रियान्वित करने में सहायक होता है। दूसरे शब्दों में यह परंपरात अर्थशास्त्र के विपरित सामाजिक परिस्थितियों, दशाओं, ताने बाने आदि कारकों को महत्व प्रदान करता है। व्यवहारवादी अर्थशास्त्र की कार्यविधि परंपरावादी विकास अर्थशास्त्र की ऐसी नीतियां बनाने में सहायता करता है जो समाज की आवश्यकताओं के अधिक अनुरूप हों।

विश्व बैंक की Mind, Society and Behaviour पर शब्द रिपोर्ट ने विकास अर्थशास्त्र में व्यवहार के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आधारों के महत्व पर बल दिया है। रिपोर्ट में मानवीय निर्णय प्रक्रिया के तीन नियमों पर चर्चा की है, अर्थात् स्वचालित प्रायः चिन्तन, सामाजिक चिन्तर और कतिपय मानसिक प्रतिमानो के प्रयोग कर चिन्तन। पहला नियम उन दो प्रक्रियाओं विषयक है जिन्हें व्यक्ति सोचते हुए प्रयोग करता हैः (i) एक तुरन्त, स्वचालित और सहसंवंधी तथा (ii) एक धीमा प्रयास या मेहनत भरा और सोच समझकर लिया गया निर्णय। दूसरे, मानव के चिन्तन पर सामाजिक वरीयता में, सामाजिक ताने बाने और सामाजिक मानकों का भी प्रभाव होता है।

अतः केवल स्वहित प्रेरित व्यवहार के विपरित यह माना जाता है कि व्यक्ति न्यायपूर्णता और पारस्परिकता के सामाजिक वरीयता को अपने चिन्तन में शामिल करते हैं। व्यक्ति समाज में अपनी पहचान बनाना चाहते हैं और इसीलिए में सामाजिक अपेक्षाओं पर खरा उतरने का प्रयास करते दिखते हैं। और अन्त में, चिन्तन करते समय व्यक्ति इस प्रकार के मानसिक प्रतिमानों का उपयोग करते हैंः (i) पहले से विद्यमान संकल्पनाएं (ii) वर्ग, (iii) रूढ़ विचार, (iv) विश्व में प्रचलन आदि। ये मानसिक प्रतिमान इन बातों को प्रभावित करते हैं कि व्यक्ति किसी उपस्थित स्थिति को कैसे समझेंगे और फिर उसमें कैसे कार्य करेंगे। ये तीन नियम कि व्यक्ति किस प्रकार निर्णय लेता है ही व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र में नीतिनिर्धारण के लिए उपयोगी नवीन दृष्टिकोणों की रचना में प्रयोग किए जाते हैं।

19.2 व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र क्या है?

व्यवहारवादी अर्थशास्त्र यह स्वीकार करता है कि व्यक्ति सदैव तर्कशील नहीं रह पाते। इसका अर्थ है कि वे उनका स्वयं पर नियंत्रण पूर्ण नहीं हाता और वे स्वतःशोधी बन कर जटिल निर्णय लेने लगते हैं। इसका सुझाव है कि नीति स्तर पर छोटे छोटे और न्यून लागत वाले व्यवहारिक बदलावों से विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ सकते हैं।

व्यक्ति मूल एवं वर्तमान के विषय में अपनी निजी व्याख्याओं तथा भविष्य की मान्यताओं के आधार पर निर्णय करने लगते हैं। अतः वे प्रायः तर्कहीन एवं अभिनति से ग्रस्त हो जाते हैं। व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र सुझाता है कि यहां धीमे से ठेहले वाली नीतियां अपनाते हुए विभिन्न व्यक्तियों की अभिनतियों को कुछ कुछ अपनाकर उन्हें वांधित दिशा में मोड़ने की आवश्यकता होती हैं। ये विधि व्यक्ति की चयन की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए उस चयन को ही प्रभावित कर जाती है। पुनः स्मरण कराना, गैर–मौद्रिक उपहार, सार्वजनिक सूचनाएं, वस्तु को सरलता से उपलब्ध कराना, प्रेरक संदेश नकद अन्तरण आदि यह प्रयोग होने वाले कुछ निम्न लागत उपाय हैं। भारत में ''स्वच्छ भारत मिशन'' और 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' योजनाओं में व्यवहारवादी अर्थशास्त्र की अंतर्दृष्टियों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार के न्या में लोगों को अपनी भ्प्ट औषधी लेने के लिए साप्ताहिक संदेशों के प्रेरण ने दवा को नियमितत लेने वालों के अनुपात को 40 प्रतिशत से बढ़ा कर 53 प्रतिशत पर पहुँचाने में सफलता दिलाई है। इसी प्रकार धीमे धीमे ढेलने की नीति की सफलता का एक उदाहरण भारत में बाल टीकाकरण में मिलता है। भरोसेमंद टीकाकर्ता के साथ प्रोत्साहन स्वरूप कहीं दालों के पैकेट तो कहीं धातु की

थालियां/प्लेट दिए जाने का भी सफल सद्प्रभाव रहा है। स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण, गरीबी निवारण, बचत संवर्धन, प्रौद्योगिकी अपनाने आदि के संदर्भ में व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। हम इनमें से कुछ क्षेत्रों में इस अर्थशास्त्र की अन्तदृष्टियों पर अगले भागों में चर्चा करेंगे। आइए उससे पूर्व व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र की प्रायः प्रयुक्त संकल्पनाओं का परिचय पा लें।

1. **वर्तमान के प्रति अभिनतिः** वर्तमान और भविष्य के बीच तुलना करते समय प्रायः वर्तमान को अधिक वरीयता भारत दिया जाता है। यहां समय या मिति काटा होता है जिसके कारण निर्णय में कुछ अभीष्टता हानि हो जाती है। वर्तमान के प्रति अभिनति के कारण पूर्वोपायी चिकित्सा, शिक्षा, बचत आदि में कम धनराशियां लगाई जाती हैं।
2. **अमानक विश्वासः** व्यक्ति प्रायः अपनी योग्यता या क्षमता का अधिक अनुमान लगाए रहते हैं और उनकी निर्णय प्रक्रिया में अतिविश्वास शामिल हो जाता है। यह अनेक मामलों में गैर–तार्किक फैसलों का कारण बन जाता है। इससे बचत, बीमा, स्वस्थता आदि पर कम राशियों का प्रयोग होने लगता है। साथ ही व्यक्ति बहुत कम आंकड़ों को लेकर आगे प्रेक्षण और सामान्यीकरण करने लगते हैं। उदाहरण यदि आज कोई व्यक्ति स्वस्थ है तो लघु संख्या नियम उसे यह बहम दे देता है कि वह भविष्य में भी सदा स्वास्थ रहेगा। इससे पूर्वोपायी चिकित्सा उपायों में निवेश कम रह जाता है।
3. **हानि विमुखताः** व्यक्ति प्रायः ऐसी हानि से बचे रहना चाहता हूं जहां समान लाभ की प्राप्ति संभव हो– अर्थात् वह लाभ की अपेक्षा उक्त हानि की आशंका को अधिक मान देता है। यह हानि विमुखता निर्णय प्रक्रिया में निवेश पर दुष्प्रभाव डालती है।
4. **सूचना/जानकारी का अभावः** महत्वपूर्ण जानकारी पाने या सांझी करने से बचने से भी व्यक्ति की धारणाएं अभिनतिग्रस्त रह जाती है। ईर्षा या अभिमान व्यक्ति को जानकारी सांझी करने से रोक देते हैं। तो कभी कुछ पूछने में झिझक या शर्म उसे रोकती है। इन सब कारणों से भी अभीष्ट स्तर के निर्णय नहीं हो पाते।
5. **प्रेक्षण अभिनतिः** व्यक्ति अपनी अभिरूचियों के भविष्य में भी आज ही की भांति रहने का भ्रम पाले रखते हैं। वह इसी कारण भविष्य की अस्वस्थता के लिए कोई प्रावधान नहीं कर पाते। उनका स्वास्थता निवेश कम रह जाता है।

6. **सीमित ध्यान एवं याद्दाश्तः** यह परिवेश/पर्यावरण में हो रहे बदलाव के साथ ढलने में बाधक हो जाते हैं। पूर्वापायी स्वास्थ्यता और शिक्षा में निवेश कम रह जाते हैं।
7. **फंस जानाः** निर्णय अपेक्षित परिणामों नहीं इस बात पर आधारित हो जाते हैं कि उन परिणामों को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है। अतः आधारिक स्तर का सटीक निरूपण बहुत महत्वपूर्ण होता है।
8. **स्वःशोधः** व्यक्ति तुरंत निर्णय पर पहुँचने के लिए किसी 'अँगूठा छाप' विधि को अपना लेते हैं। इस संदर्भ में चार स्वःशोध बहुत जाने माने हैं। ये हैः

   (i) **आधारित और समंजन स्वशोधनः** यह एक बोध की अभिनति है जहां व्यक्ति निर्णय बताई गई बातों को ही सत्य मान लेते हैं। वास्तविकता उनसे बहुत अलग हो सकती है, फिर शोध दर्शाते हैं कि ऐसी धारणाओं का व्यवहार और निर्णय पर गहरा प्रभाव रहता है।

   (ii) **प्रतिनिधित्व स्वशोधः** यह किन्हीं अनिश्चित परिस्थितियों में अपनाया गया संकरा गलियारा ही है व्यक्ति किसी वर्तमान मानसिक बिम्ब से सादृश्य के आधार पर ही निर्णय करने लगते हैं। परिणामतः प्रेक्षण अभिनति की आशंका हो जाती है।

   (iii) **सुलभता स्वःशोधः** यहां किसी घटना के होने की संभाव्यता को जो आंकड़ा सबसे पहले दिमाग में कोंध जाए वही मान लेते हैं। यह एक बोध अभिनति का कारण बन जाता है और वास्तविकता का सटीक प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। यदि किसी पड़ोसी का किसी निवेश में हानि उठानी पड़ी हो तो ''व्यक्ति अच्छा अवसर सुलभ होने पर भी हानि को ही अवश्यसंभावी मान बैठता है।

   (iv) **प्रभावानुभूति स्वःशोधः** यह व्यक्ति को अपनी अनुभूति के आधार पर किसी घटनाक्रम की संभाव्यता का आंकलन करने में सहायक है। यदि किसी को कोई बात अच्छी लगती है तो वह उसकी संभाव्यता को अधिक मान बैठता है (और इसके विलोम भी)।

सार रूप में व्यवहारवादी अर्थशास्त्र के तीन नियम हैंः (i) सीमित तर्कशलता, (ii) सीमित इच्छा शक्ति और (iii) सीमित स्वःहित। ये मिलकर व्यक्ति को असंबद्ध जानकारी को आधारित बनाने, यथ–स्थिति को वरीयता देने, हानि विमुखता और स्वःशोध की ओर उन्मुख कर देते हैं। ये सभी गैर–अभीष्ट निर्णय का कारण बन जाते हैं।

बोध प्रश्न –1

1) व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) परंपरागत विकास अर्थशास्त्र की मान्यताएं बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) रिक्त स्थान भरें।

क. ..... स्वःशोध में किसी बात के तुरन्त सूझ पाने को ही उसके हो जाने की संभाव्यता का आधार मान लेता है।

ख. ..... स्वःशोध में किसी बात के प्रति अपनी अनुभूति को ही निर्णय का अधार बना लेते हैं।

ग. व्यक्ति भविष्य की अभिरूचियों को आज जैसी ही होने का भ्रम .... के आधार पर पाल लेते हैं।

घ. वे गैर–मानक धारणाएं बताएं जिन्हें कोई व्यक्ति अपनाए हुए हो सकता है।

19.3 व्यवहारवादी स्वास्थ्य/स्वस्थता

स्वस्थता किसी भी व्यक्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण 'परिसंपदा' है। अतः अपेक्षा की जाती है कि व्यक्ति स्वस्थ आदते अपनाने, टीकाकरण कराने जैसे तर्कशील निर्णय करेंगे। किन्तु अध्ययन दर्शाते हैं कि प्रायः इन मामलों में सही निर्णय नहीं लेते– प्रायः उनके ये कदम उनके अपने स्वःहित के विपरीत ही रहते हैं। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य बीमा न कराना और धुम्रपान जैसे हानिकार कार्य करना ऐसे ही उदाहरण हैं। अनिश्चय की स्थिति में तथा वर्तमान लागतों और भविष्य के हितलाभों के बीच

समप्रत्ययन की दशा में निर्णय करना कठिन हो जाता है। उनके आत्मसंयम पर भी प्रश्न उठ ही जाते हैं– वे आज के आनंद को कल के स्वस्थ जीवन से बेहतर मानते दिखाई देते हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्तियों के व्यवहार में यथास्थिति के प्रति अभिनति रहती है और जहां बदलाव ही उनके अपने भावी स्वःहित में हो वहां भी कतराते दिखाई देते हैं। व्यक्ति कुछ घटनाक्रमों की संभाव्यता का अधिक या अधो–अनुमान करते हैं। उदाहरण के लिए वे मानते हैं कि उन्हें तो कोई घातक बिमारी होगी ही नहीं– जैसे कि कैंसर या फिर वे भविष्य के प्रति अतिआशावादी होते हैं। किसी कारण वे चिकित्सा या जीवन बीमा नहीं कराते। एक नवीनतम उदाहरण तो कोविड–19 के टीकाकरण का ही है। विश्व भर में सरकारें निःशुल्क टीका लागने का प्रचार कर रही थी। किन्तु कितने ही लोगों ने पिछले अनुभव या वैयक्तिक अभिनति के कारण टीके नहीं लगवाए। ये मान्यता है कि व्यक्ति तर्कशील है और इस प्रकार निर्णय लेते हैं कि उनकी अपनी उपयोगिता अधिकतम हो। किन्तु परंपरागत अर्थशास्त्र का यह सिद्धांत उनके व्यवहार की व्याख्या नहीं कर पाया। इसका अर्थ यही होगा कि व्यक्तियों ने सारी सुलभ जानकारियां भी एकत्र नहीं की और उनके विश्लेषण के आधार पर अपने श्रेष्ठतम स्वःहित का आंकलन नहीं किया। यह हमेशा नहीं होता। फिर भी हमारा उपर्युक्त उदाहरण बताता है कि लोग तर्कहीन व्यवहार भी कर जाते हैं। इस भाग में हम स्वस्थता के विषय में व्यवहारवादी अर्थशास्त्र द्वारा ऐसे व्यवहार की समीक्षा करेंगे जहां व्यक्ति तर्कशील नहीं रह पाते और अपने निर्णय लेते समय अनेक बोध और मनोवैज्ञानिक अभिनतियों से ग्रस्त है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक बड़ी समस्या पूर्वोपायी स्वास्थता में आवश्यकता से कहीं बहुत कम निवेश है। ये पूर्वोपाय संभावी रोगों से बचाव हेतु जांच आदि कर समय रहते चिकित्सा प्रारंभ करने का ही नाम है। इस कार्य में निवेश रूग्णता के भार को कम करके तत्संबंधी जौखिमों को घटा सकता है। विश्व स्तर पर मृत्यता और अपंगता के मुख्य कारण दीर्घकालिक रोग ही हैं जिनके कारण स्वस्थता लागतें बहुत अधिक हो जाती हैं। अतः स्वस्थता परिणामों में सुधार की आवश्यकता है। पूर्वोपायी देखभाल के कुछ उदाहरण हैंः (प) मधुमेय और कालेस्ट्राल के लिए नियमित रक्त की जाँच, (पप) रक्त चाप पर ध्यान देना, (पपप) कैंसर की आशंका की जांच आदि। जीवन की मशीनी शैली के कारण जो तनाव और अस्वास्थ्यकर खान–पान से जुड़ी हैं, पूर्वोपायी स्वस्थता निवेश बीमारियों के समय रहते निदान के लिए बहुत जरूरी हो गया है। व्यवहारवादी अर्थशास्त्र पूर्वोपायी स्वस्थता उपायों में निम्न स्तर के निवेश के कारणों में एक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। आइए उसके विभिन्न आयामों पर चर्चा करें

वर्तमान के प्रति अभिनतिः वर्तमान के लिए वरीयता भी स्वस्थता पूर्वोपायों में निम्न निवेश का एक बड़ा कारण है। ये इनके माध्यम से प्रभावी होता है (i) टालमटोल

अर्थात् आज का काम कल पर टालने की आदत, और (ii) तरलता का अभाव स्वास्थ्य में निवेश में आज की तात्कालिक लागत और बाद में हितलाभ के बीच समप्रत्ययन की स्थिति होती है। तात्कालिक लागतें केवल मौद्रिक नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक लागतें और परेशानियाँ भी होती हैं।

उदाहरणः डॉक्टर के पास जांच और टीकाकरण के लिए जाना, नियमित व्यायाम और स्वास्थ्यकर आहार आदि के लिए प्रयास करने पड़ते हैं। किन्तु उनके लाभ तो बहुत बाद में होते हैं। समय–सीमित प्रोत्साहन और लागतों में छूट इस टालमटोल को कम कर सकते हैं। समय रेखा मुक्त स्वस्थतापूर्ण व्यवहार (व्यायाम शुरू करना, अस्वस्थ्यकर आहार छोड़ना आदि) में प्रायः आत्मसंयम का प्रश्न उठ खड़ा होता है और लोग टालमटोल ही कर जाते हैं। लागतपूर्ण स्वास्थ्यकर व्यवहार अपनाने में तरलता का अभाव बाधक हो ही जाता है। क्योंकि उन्हें तत्काल ऐसी आवश्यकता का अनुभव नहीं होता। उदाहरण के लिए सीमित मौद्रिक संसाधन वाला व्यक्ति स्वास्थ्य बीमा कराने की अपेक्षा आवश्यकता चीजों की खरीददारी करना बेहतर समझेगा।

आत्म नियंत्रण या संयम का अभाव : स्वस्थता विषयक निर्णय लेने में लोग संयम के अभाव का सामना कर रहे है। उदाहरण के लिए भोजन की मेज पर 'खीर' जैसी चीज़ देखकर मधुमेह रोगी उस 'पकवान' के संभावी नुकसान को भूल ही जाता है। यह संयम का अभाव मनुष्य की ईच्छा शक्ति की सीमितता का ही परिचायक है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति यह जानते हुए भी कि कोई उसके दीर्घकालिक हित में नहीं है फिर भी उसे कर डालता है। उदाहरणः प्रायः सभी धुम्रपानकर्ता ये स्वीकार करते है। कि उन्हें यह आदत छोड़नी ही चाहिए और वे इसके लिए नशा मुक्ति शिविर में जाने या दवाएँ खरीदने पर ही खर्च करने को तैयार हो सकते हैं। व्यवहारवादी अर्थशास्त्र सुझाता है कि उपर्युक्त प्रकार की लालसा से बचने के लिए चयन विकल्पों की रचना ही इस प्रकार की जानी चाहिए कि व्यक्तियों को स्वास्थ्यकर निर्णय लेने का प्रोत्साहन मिले। उदाहरण के लिए रिचर्ड थेलर, जिन्हें व्यवहारवादी अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है, का सुझाव है कि बच्चों को केंटिन में स्वास्थ्यकर भोजन का प्रोत्साहन देने के लिए ऐसे पकवान सीधे ही दृष्टिपथ में आने वाले स्तर पर रखे जाने चाहिए और अस्वास्थ्यकर सामग्रियां नीचे के स्तर के खानों में।

अभिनत विश्वास/धारणाएंः प्रायः लोगों को बीमार पड़ने संभाव्यता और बीमार होने के बाच खर्चों का सही अनुमान नहीं होता। यह अल्पानुमान ही पूर्वोपायी स्वस्थता में निवेश को न्यून स्तर पर रखता है। अभिनीतिपूर्ण धारणा के मुख्य स्त्रोत भावी अनिश्चितता और वैयक्तिक जोखिम के कारक हैं। प्रायः जीवन के तीसरे दशक में व्यक्ति हृदय रोग या गुर्दे की विफलता आदि के कारण शल्य चिकित्सा पर संभावित

खर्च के विषय में सोचता भी नहीं। किन्तु इतने युवा व्यक्तियों को भी ऐसी बीमारी हो सकती है। अपने आपको लेकर अभिनति पूर्णधारणा के कारण व्यक्ति उपयुक्त स्तर का निर्णय नहीं ले पाता। स्वस्थता निवेश से भावी हितलाभ को लेकर भी प्रायः लोगों की धारणाएं सटीक नहीं होती। यह न्यून आकलन भी पूर्वापायी स्वास्थता में न्यून निवेश का एक कारण है।

सांख्यिकीय त्रुटियांः प्रायः लोग बहुत छोटे से प्रतिदर्श के आधार पर ही निष्कर्ष या सामान्यीकरण कर लेते हैं और बड़े प्रतिदर्श से सुलभ जानकारी पर इतना ध्यान नहीं देते। ऐसी सांख्यिकीय त्रुटियां भी गलत धारणाओं को जन्म देकर तर्कहीन निर्णय का कारण बन जाती हैं। उदाहरणतः कोविड–19 के दौरान टीकाकरण कराने और मास्क पहनने के बारे में अनेक सूचना अभियान चलाए जा रहे थे किन्तु कितने ही लागों ने अपनी अभिनतिपूर्ण धारणाओं के मारे उन अभियानों पर अधिक ध्यान नहीं दिया। कुछ लोग तो जुर्माने से बचने के लिए मास्क लगाने के उपक्रम मात्र करते थे और वह भी गलत तरीके से। अतः उन अभियानों से लोगों ने पर्याप्त स्तर पर निष्कर्ष नहीं निकाले। इसी प्रकार किसी टीकके के एक नकारात्मक प्रतिक्रिया के उदाहरण को लेकर बहुत शीघ्र ही सामान्यीकरण होने लग जाते हैं।

भावनाएंः निर्णय प्रक्रिया व्यक्ति की मानःस्थिति और भावनाओं पर भी निर्भर पायी गई है। भय या विषाद की दशा में तर्कहीन निर्णय की संभावनाएं अधिक हो जाती हैं। यदि कोई परिजन बीमार हो तो उस समय अनुपयुक्त बीमाकत्र या स्वास्थ्य सेवा प्रदाता के चुनाव की आशंका अधिक होती है। ऐसी दशा में व्यक्ति चिकित्सा सेवा प्रदाताओं में से सही चचयन कर पाने हेतु उपयुक्त मनोदशा में नहीं होता।

प्रमुखताः व्यक्ति के निर्णय जानकारी की प्रस्तुति के साथ–साथ इस बात पर भी निर्भर करते हैं कि किस जानकारी को कितनी प्रमुखता दी गई है। अर्थात् किसी निर्णय को प्रभावित करने के लिए सूचना की दृश्यता अधिक होनी चाहिए। उदाहरण के लिए टीकाकरण के बैनर प्रमुख स्थानों पर लगाना, स्वस्थता कार्यक्रमों की सूचना के साथ–साथ इस विषय में याद दिलाना आदि भी वांछित निर्णनयन को संभव बना सकते हैं।

संज्ञान–भार तथा निर्णयन थकानः निर्णय लेते समय व्यक्ति बहुत अधिक संज्ञान भार का अनुभव करता है। इसका कारण यही है कि उनकी जटिल सूचनाओं के प्रसंस्करण और अनिश्चित परिवेश का सामना करने की क्षमताएं सीमित होती हैं। ऐसी संज्ञान–भार एवं निर्णयन थकान के कारण भी स्वस्थता निवेश के अल्पअभीष्ट निर्णय हो सकते हैं। यहां सूचनाओं और चयन विकल्पों को सरल रूप में प्रस्तुत करना संज्ञान अभिनति के निवारण में सहायक हो सकता है।

यथास्थिति अभिनतिः जब कोई चीज हमारे पास होती है तो हम उसे छोड़ना नहीं चाहते, अन्य अच्छे विकल्प होते हुए भी हम अपनी इसी बात पर जमे रहते हैं। ऐसे यथास्थितिवाद के कारण निर्णय प्रक्रिया तर्कहीन हो जाती हैं। इसके कारण भी लोग पूर्वोपायी स्वस्थता में निवेश नहीं करते। उदाहरणतः व्यक्ति वर्तमान स्वास्थ्य सेवा प्रदाता से ही बंधे रहते हैं। भले ही कोई अन्य प्रदाता कम लागत पर बेहतर सेवाएं प्रदान कर रहा हो। ये यथास्थितिवाद वर्तमान दरों, शर्तों आदि से परिचित होने के कारण भी हो सकता है।

बोध प्रश्न –2

1) वर्तमान के प्रतिअभिनति किस प्रकार पूर्वोपायी स्वस्थता निवेश को न्यूनस्तर पर रखता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) स्वास्थ्यकर व्यवहार के सुधार के लिए संयम को किस प्रकार प्रभावित किया जा सकता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) पूर्वोपायी स्वास्थ्य सेवा में यथास्थिति अभिनति का क्या अर्थ है? एक उदाहरण द्वारा समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

19.4 व्यवहारवादी शिक्षा

व्यक्तियों का एक सबसे बड़ा निर्णय यह होता है कि वे अपनी शिक्षा पर कितनी धनराशि और समय लगाएंगे। यह इन कारणों से एक महत्वपूर्ण निर्णय होता हैः (1) यह व्यक्ति को बेहतर निर्णय लेने में उपयोगी उपस्करों से सन्नद्ध ही नहीं करता (पप) बल्कि उसके लिए रोजगार के अवसर भी सुलभ कराता है। यह आगे चलकर व्यक्ति के सकल क्षेम में सुधार लाता है। शिक्षा समाज और पूरे राष्ट्र के लिए भी लाभप्रद रहती है। समाज को (i) जीडीपी में शिक्षितों के अधिक योगदान तथा (ii) व्यक्तियों में एक सुदृढ़ जीवन मूल्यों की व्यवस्था के विकास से लाभ मिलता है। आज जब विश्व ज्ञानाधारित समाज की और अग्रसर है सभी देशों को अपने नागरिकों का विशिष्ट कौशल संपन्न होना आवश्यक हो रहा है। नवीन शिक्षा नीति, 2020, का लक्ष्य व्यावसायिक सहित उच्चतर शिक्षा में सकल भरती अनुपात को 2019 के 26.3ः से बढ़ाकर 2035 तक 50ः पर ले जाना है।

फिर भी अनेक मामलों में देखा गया है कि व्यक्तियों का निजी शैक्षिक निवेश अभीष्ट स्तर का नहीं होता। ये बात परंपरागत अर्थशास्त्र को हैरान करने वाली लगती है। वह तो व्यक्ति को तर्कशील निर्णय में सक्षम मानता है। व्यवहारवादी अर्थशास्त्र के सिद्धांतों का प्रयोग मानवीय पूंजी के नव क्लासिकी मानक से इस विच्युति की व्याख्या कर सकता है। इसकी अंतर्दृष्टियां उन कारकों की पहचान कर सकती है जिनसे व्यक्ति शिक्षा पर अपनी जरूरत से कम ही व्यय करते हैं। ये व्यक्ति और राष्ट्र के अपने शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति में आ रही बाधाओं को समझने में सहायता मिलती है। यह उपयुक्त नीतियों की रचना में सहायक हो सकता है। शैक्षिक निवेश में दिखाई दी कुछ विसंगतियों की व्यवहारवादी व्याख्याएं इस प्रकार हैंः

वर्तमान के प्रति अभिनतिः शिक्षा पर निवेश के फैसले से वर्तमान लागतों (वर्तमान आय के अवसर गंवाना, समय लगाना, थकान या पढ़ाई से बोरियत) तथा अधिक आय जैसे भावी हितलाभों के बीच सम प्रत्ययन होता है। ये अन्तरकालिक समप्रत्ययन काल विसंगत वरीयताएं दर्शाते हैं– अर्थात् व्यक्ति वर्तमान के प्रति अभिनति के कारण भावी संप्राप्ति की अपेक्षा वर्तमान के लिए अतिरिक्त काटा कारक का प्रयोग कर जाते हैं, वे अदूरदर्शितापूर्वक वर्तमान लागतों को भावी आय से अधिक भारमान दे देते हैं। प्रायः निवेश से जुड़ी वर्तमान लागतें तो ज्ञात होती हैं। पर भावी हितलाभ अनिश्चित और अज्ञात होते हैं। ऐसी दशा में हमारा मस्तिष्क वर्तमान लागत को अधिक तथा भावी हितलाभों को कम अधिमान देने लगता है।

द्वितीय व्यवस्थाः नामक यह चिन्तन एक प्रयासयुक्त एवं जानबूझकर किया जा रहा विचार है। इसमें अनअभीष्ट निर्णय तक पहुँचने सारी जानकारी का विश्लेषण करने

में बहुत प्रयास होता है। उदाहरण के लिए परीक्षा हेतु पढ़ाई की बात लें। सत्रीय कार्यों की तैयार, परीक्षा में बैठना आदि की कुछ स्पष्ट लागतें ये भी हैः मित्रों के साथ मटर गश्ती के अवसर गंवाना, खेलकूल करना आदि। कई मामलों में शिक्षार्थी इस कारण भी पढ़ाई से बचते दिख जाते हैं कि उन्हें पढ़ाई की लागतें संभावी हितलाभों से कहीं अधिक प्रतीत होती हैं।

व्यवहारवादी दृष्टिकोण सुझाता है कि वर्तमान अभिनति से पार पाने के लिए शैक्षिक उपलब्धियों के लिए कुछ प्रोत्साहन होने चाहिए। उदाहरणः भारत में बालिकाओं की शिक्षा के संवर्धन के लिए ''बालिका समृद्धि योजना'' जैसी कार्यक्रम चल रहे हैं जो गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को इस कार्य के लिए आर्थिक प्रोत्साहन देती हैं। इसी प्रकार की अन्य योजनाएं 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओं तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की 'उड़ान' योजना आदि है। विद्यार्थियों में वर्तमान के प्रति अभिनति के निवारण के लिए उन्हें वर्तमान लागतों और भावी लाभ के सटीक मूल्यांकन के लिए प्रेरित करके किया जा सकता है। इस अभिनति के निर्मूलन की एक अन्य विधि तो वर्तमान लागतों के परिहार हेतु लाभ प्रदान करना हो सकती है। उदाहरणः मध्यकाल आहार, निःशुल्क वर्दी, सरकारी स्कूलों के छात्रों के खातों में सीधे धन अन्तरण आदि ऐसी योजनाएं हैं जिन्हें भारत में तात्कालिक लागतों के निवारण के लिए अपनाा गया है। उपलब्ध स्वःशोधनः तुरन्त एवं सहज सुलभ जानकारी के आधार पर निर्णय ही यह स्वःशोधन है। कई बार शिक्षार्थी एवं अभिभावक तुरंत मिली जानकारी का ही प्रयोग करते हैं और अन्य उपयुक्त एवं निशुल्क जानकारी की अनदेखी कर जाते हैं। ऐसी स्वचालित चिंतन प्रक्रिया (प्रक्रिया–19) तुरन्त उपलब्ध जानकारी का ही निर्णय हेतु प्रयोग करती है। उच्चतर शिक्षा की बात आते ही लोग केवल उसकी उच्च लागत की चर्चा करते हैं और उपलब्ध छात्रवृत्तियों की जानकारी को दृष्टिगत कर जाते हैं। यह बात अनेकों व्यक्तियों को उच्च शिक्षा से दूर ही रखती है।

आत्मनियंत्रण/संयम की समस्याः व्यवहारवादी अर्थशास्त्र मानता है कि व्यक्तियों की कुछ गैर–मानक धारणाएं होती हैं, जैसे किः (i) अपनी योग्यता पर अति विश्वास, (ii) आत्मनियंत्रण, (iii) काल विसंग वरीयता जैसी गैर–मानक वरीयताएं (यह स्वीकार नहीं करना कि यदि आज टालमटोल कर रहे हें तो आगे भी ऐसे ही करेंगे आदि) इसके कारण भावनात्मक एवं प्रतीति जैसी अभिनतियों को अधिक अधिमान देकर शिक्षा निवेश कम रखा जाता है। यही नहीं शिक्षा क्रम में अपने अंक अनुक्रम और प्रज्ञा परिणाम सुधारने के लिए भी बहुत से शिक्षार्थी आवश्यक प्रयास नहीं करते हैं जबकि वे जानते हैं कि उन्हें अन्ततः पछताना पड़ सकता है। ऐसी समस्या के समाधान के लिए प्रतिबद्धता उपस्कर जैसे उपाय अपनाए जा सकते हैं। ये हो सकते

हैं: लक्ष्य एवं समय सीमाएं तय करना, अंतर्निहित एवं गैर–अंतर्निहित संप्रेरणा आदि का प्रयोग कर शिक्षक और अभिभावक बच्चों में काम से जी चुराने की समस्या को कम कर सकते हैं।

बोध प्रश्न –3

1) लोग शिक्षा में अभीष्ट से कम निवेश क्यों करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) विभिन्न नीतियां किस प्रकार शिक्षार्थियों को टालमटोल करने से बचने को प्रोत्साहित कर सकती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) किस प्रकार से स्वःशोधन (मानसिक अनुमान) व्यक्तियों को उच्च शिक्षा में अधिक निवेश करने से रोक देता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

19.5 पर्यावरण मित्र व्यवहार में व्यवहारवादी अर्थशास्त्र

अब विश्वभर में नीति निर्माताओं के लिए वातावरण में परिवर्तन एक महत्वपूर्ण सरोकार बन चुका है। सं.राष्ट्र के नवीनतम आंकलन (2022) के अनुसार वैश्विक ऊष्णन के अनेक प्रभाव अब वापस नहीं बदले जा सकते। अनेक स्थानों पर वर्षा में

बड़े बदलाव आए हैं, परिणाम रहा है अधिक बार बाढ़, सूखा या अति अधिक वर्षा। समुद्र का स्तर ऊपर उठ रहा है, महासागर पहले की अपेक्षा अधिक गर्म हो रहे हैं और उनके जल की प्रवृत्ति अधिक अम्लीय होती जा रही है– ध्रुवीय क्षेत्र में हित–परत पिघल रही है। हमारे किए गए कार्यों के प्रभाव हमारे भविष्य के लिए ही गंभीर संकट पैदा कर रहे हैं। किन्तु सं.राष्ट्र भी स्वीकार कर रहा है कि अभी निकृष्अतम परिणामों से बच सकतने का एक छोटा सा अवसर विद्यमान हैं।

शोध दर्शा रहे हैं कि आमतौर पर लोग पर्यावरणीय समस्याओं को दूर भविष्य में किसी जोखिम की आशंका मान लेते हैं जिस पर विशेष ध्यान देने की जरूरत नहीं होती। इसी कारण उन्हें पर्या–प्रभावों को कम करने के लिए कुछ प्रयास व निवेश आवश्यक नहीं लगते। कई बार तो कुद बदलाव की जरूरत अनुभव करने के बाद भी उन दुष्प्रभावों के निवारण के लिए उन्हें कितना लागत उठानी है इस बात का कोई अनुमान नहीं होता। परंपरात अर्थशास्त्र में तो व्यक्ति अपने स्वहित में निर्णय लेता है और इस समस्या की और ध्यान ही नहीं दिया जाता। व्यवहारवादी अर्थशास्त्र की कुछ अंतर्दृष्टियां पर्यावरण के प्रति तर्कहीन व्यवहार के स्रोतों को समझने में सहायता हो सकती हैं। पर्या–मित्र व्यवहार उसे माना जा सकता है, जो पर्यावरण पर नकारात्मक व्यवहार में कभी और सकारात्मक व्यवहार में वृद्धि करता हो।

व्यक्तियों में ऐसे व्यवहार को बढ़ावा देने में मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रिक प्रक्रियाओं की एक बड़ी भूमिका रहती है। परिवर्तन तभी लाया जा सकता है जब जनता परिवर्तन चाहती हो। पर्यावरण के संदर्भ में इसका अर्थ यही है कि जनसामान्य को पर्यासंकट की गंभीरता और निकटस्थता को समझना होगा। उन्हें परिवर्तन हेतु संप्रेरित करना होगा पर्यामित्र व्यवहार में प्रायः स्वःहित और सामाजिक हित के बीच कुछ समप्रत्यय होता है। ऐसे निर्णय लेने में व्यक्ति किन्हीं व्यवस्थागत अभिनतियों से ग्रस्त पाए जाते हैं।

19.5.1 पर्यावरण पर व्यवहारवादी अंतदृष्टियां

पर्यामित्र निर्णय लेने के समय व्यक्ति जिन अभिनतियों को प्रदर्शित करते हैं उनके मुख्य वर्ग इस प्रकार हैंः

पर्यासमस्याओं के विषय में अनुभूतिः ऐसे निर्णयों के प्रभाव के विषय में अनिश्चितता ही इस अभिनति का मुख्य कारण है। उदाहरण के लिए हमारे नकारात्मक व्यवहार के (अर्थात् बिजली, पानी का दुरूपयोग/बर्बादी) दुष्प्रभाव बहुत धीमे–धीमे होते हैं और इसी कारण तुरन्त दिखाई नहीं पड़ते। इसी कारण लोग नहीं समझ पाते कि उनके किसी काम से पर्यावरण को क्या क्षति पहुँचेगी।

परिवर्तन का प्रतिरोध या यथास्थितिवादः व्यक्तियों प्रायः अनिश्चित भविष्य पर वर्तमान को वरीयता देते हैं। इसीकारण चयन में कोई परिवर्तन कर पाना सरल नहीं होता। यहां टालमटोल या निर्णय का स्थगत शुरू हो जाता है। यथास्थितिवाद ही व्यक्तियों की सौर ऊर्जा और विद्युत चालित वाहनों के निवेश में उत्साहहीनता का कारण है।

वर्तमान की अभिनतिः पर्यावरणीय प्रभाव बहुत देर से दिखाई देने के कारण लोगों में वर्तमान से लगाव बना रहा है। उनका तात्कालिक वास्ता वर्तमान से रहता है, सुदूर भविष्य से नहीं। यही कारण है कि हम ये जानते हुए भी कि पर्यावरण परिवर्तन का भावी पीढ़ियों पर कितना गंभीर प्रभाव होगा। हम आज पर्यामित्र निर्णय नहीं ले पाते हैं। इस अभिनति का एक मुख्य कारण भविष्य की अनिश्चितता भी है। लोगों को यह प्रतीत ही नहीं होता कि उनके किसी कार्य का कितना बड़ा पर्या–प्रभाव हो सकता है। इस वर्तमान अभिनति के साथ ही लोगों की असंगत काल वरीयता भी जुड़ी है।

ज्ञान और समझ का अभावः यदि लोगों को पर्यामित्र व्यवहार की तत्काल जरूर की अनुभूति हो और वे सुधार के लिए कुछ करना चाहते हों तो भी उन्हें समझ नहीं आता कि वे क्या और कैसे करें। उन्हें कार्यों और उनके प्रभावों की समण ही नहीं होती। चेतना कार्यक्रमों और प्रतिपुष्टि प्रक्रिया द्वारा नीतियां बनाने वाले व्यक्तियों में पर्यामित्र व्यवहार को बढ़ावा देते हैं।

सामाजिक मानकः पर्यामित्र व्यवहार को बढ़ाने में समाज के अपने मानक या मानदण्ड एक बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। पर्यासमस्याएं एक दुविधा अर्थात् स्वःहित या सामाजिक हित के बीच चयन का प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि सभी पर्यामित्र व्यवहार अपना लें तो भावी पीढ़ियों सहित समाज में सभी लाभान्वित होंगे। किन्तु यदि एक व्यक्ति सहयोग नहीं करे तो उसके पर्याप्रभाव नगण्य ही होगा। किन्तु यही बात अन्य सभी को ऐसा ही करने के लिए उत्साहित कर सकती है और कुल मिलाकर ऐसे चिन्तन का पर्याप्रभाव बहुत गंभीर हो जाएगा।

19.5.2 पर्यामित्र व्यवहार हेतु नीतिगत निहितार्थ

पर्याविषयक निर्णय बाहरी कारकों (वित्तीय संप्रेरणाओं) आन्तरिक कारकों (व्यक्तिगत प्रेरणा) तथा सामाजिक कारकों (सांस्कृतिक मानदंडों) से प्रभावित होते हैं। प्रभावी पर्यानीति अभिकल्प में पिछले अनुच्छेद में चर्चित अंतर्दृष्टियों की समझबूझ की जरूरत रहती है। अतः पिछले कुछ दशकों से किन्हीं पर्या कार्यों को करने या उससे रोकने के लिए धीरे से वांछित दिशा में ठेलना विशिष्ट नीतिगत उपस्कर बन गए हैं। वे लोगों की निर्णय की स्वतंत्रता छीने बिना उन्हें कुद कार्य विशेष करने को प्रेरित

करते हैं। इस विषय में व्यवहारवादी अर्थशास्त्र से इन नीतिगत निहितार्थों को ग्रहण किया जा सकता है।

एक आधारित स्थितिः यह ऐसी स्थिति है जिसके लिए लोगों को कुद नहीं करना पड़ता। उदाहरण के लिए दक्षतापूर्ण किन्तु महंगी प्रौद्योगिकी ऐसा विकल्प है जिसे जन सामान्य प्रायः अस्वीकार कर देता है। शोधकर्ता बताते हैं कि जब किसी स्वःरूचि भोज के लिए औसत आकार की थाली का प्रयोग किया गया तो लोगों को उसमें दुबारा खाना लेने के लिए मेज पर तो जाना पड़ा किन्तु खाने की सामग्री की बर्बादी काफी कम हो गई। इस प्रकार से एक आधारित स्थिति का निर्धारण तीन कारणों से बहुजन व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। प्रथमतः उनमें कुछ करना नहीं होता, फैसला भी नहीं। अतः निर्णय लेने का कोई बोझा भी नहीं होता। दूसरे किसी 'संदर्भ' पर निर्भर होने का कारक मौजूद रहता है। व्यक्ति उसी संदर्श को आधारिक मान लेते हैं और उससे किसी भी विवर्तन को हानि मानने लगते हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्ति हानि को एक बड़ा भार मानते हैं। इसी कारण वे आधारिक विकल्प से बंधे रहते हैं। तीसरे व्यक्ति आधारिकों को विशेज्ञों एवं विद्वानों द्वारा अनुशंसित मान कर चलते हैं। अन्य शब्दों में ये आधारिक 'निहित रूप से अनुमोदित' माने जाते हैं।

चयन रूप रचनाः यह निर्णयकर्ता के समक्ष चयन की प्रस्तुति से जुड़ी बात है। किसी समस्या को किस प्रकार बताया जाता है या विकल्प कैसे सुझाए जाते हैं ये भी परिणाम को बहुत प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यह कहना कि आपको अपने घर में अनावश्यक रोशनी किए रहने पर रू. 500/– की हानि उठानी होगी'' इसकी अपेक्षा अधिक प्रभावी रहेगा कि ''अनावश्यक रोशनी कम करके आय रू. 500/– बचा सकते हैं।

सामाजिक मानक/मानदण्डः निर्णय करते समय व्यक्ति केवल वित्तीय संप्रेरणाओं या लाभों से प्रभावित नहीं होता। वे अन्य लोगों के व्यवहार से भी प्रभावित होते हैं। व्यवहारवादी अर्थशास्त्र जनसामान्य को पर्यामित्र व्यवहार अपनाने के लिए प्रोत्साहित करने में इस समाजानुकरण की प्रवृत्ति को एक सशक्त उपाय मानता है। यदि किसी को अपने पड़ोसी द्वारा ऊर्जा संरक्षण के बारे में बताया जाता है तो वह सहज ही ऐसा उपाय आजमाने को तैयार हो सकता है। यद्यपि परंपरागत अर्थशास्त्र तो व्यक्ति को स्वःहित प्रेरित मानता है किन्तु प्रायः सभी अपने कामों के अन्य लोगों पर प्रभाव को लेकर भी सजग रहते हैं (ऐसा ही अन्य लोगों के कार्यों के अपने ऊपर प्रभाव को लेकर भी होता है) अतः नीति निर्माता ऐसी नीतियां बनाने के लिए जिन्हें समाज अपना लें सामाजिक मानदण्डों का उपयोग कर सकते हैं।

विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण जानकारीः

जानकारी का महत्त्वपूर्ण एवं विश्वास योग्य होना पर्यामित्र चयन में जटिलता कम कर निर्णय में सहायक हो जाता है। इसका अर्थ है कि भली प्रकार पेश की गई जानकारी हमें इन्गित दिशा में प्रयास करने को प्रेरित करती है। यदि घर में लगे 'स्मार्ट मीटर' तात्कालिक ऊर्जा खपत दर्शा रहे हों तो हमें बिजली की बर्बादी कम करने में सहायता मिल सकती है।

भौतिक पर्यावरण में परिवर्तनः अपशिष्ट प्रबंधन पुनः चक्रण आदि के संदर्भ में यह बहुत ही उपयोगी रहता है। उदाहरण कूड़े की टोकरी आसानी से पहुँच वाली जगहों पर रखी हो तो लोगों को इधर उधर कूड़ा नहीं। फैंकने का प्रोत्साहन मिलता है।

बोध प्रश्न –4

1) पर्यासमस्याओं की अनुभूति जन व्यवहार को कैसे प्रभावित करती है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) पर्यामित्र व्यवहार में यथास्थितिवादी अभिनति'' का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) पर्यामित्र व्यवहार प्रोत्साहन हेतु कुछ नीतिगत सुझाव बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

19.6 सारांश

व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र को विकास अर्थशास्त्र का ही एक विभाग माना जाता है। इसमें व्यक्तियों की निर्णय प्रक्रिया में मनोविज्ञान और सामाजिक शास्त्र के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। यहां व्यक्तियों की वरीयताओं की रचना प्रक्रिया को समझने का प्रयास होता है। मान्यता यही है कि विकास नीतियों की अभिकल्पना और क्रियान्वयन हैं यह समझना उपयोगी रहता है कि व्यक्ति किस प्रकार सोचते हैं और उनके व्यवहार पर उनकी सामाजिक अंतर्क्रियाओं के क्या प्रभाव होते हैं। इकाई में स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यावरण के संदर्भों में व्यवहारवादी अर्थशास्त्र से प्राप्य अंतर्दृष्टियों पर विशेष रूप से विचार किया गया है। विकास अर्थशास्त्र के इन तीन केन्द्रीय पक्षों की व्याख्या में व्यवहारवादी अर्थशास्त्र के इन सिद्धांतों/नियमों का वर्तमान इकाई में प्रयोग किया गया हैः वर्तमान के प्रति अभिनति, गैर–मानक धारणाएं, हानि से विरूचि, जानकारी का अभाव, प्रेक्षण अभिनति, सीमित ध्यान एवं स्मृति और स्वःशोध आदि। व्यक्तियों में पर्यामित्र व्यवहार को बढ़ावा देने के लिए यह व्यवहारवादी नियम उदृत किए गए हैं। इसमें शामिल हैंः चयन की रूप रचना, सामाजिक मानदण्डों का प्रयोग, प्रमुख एवं विश्वसनीय जानकारी प्रदान करना आदि। व्यवहारवादी विकास अर्थशास्त्र सुझाता है कि प्रत्येक तर्कहीन व्यवहार के मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रिक आधारभूत कारणों के समझकर नीति निर्माता व्यक्तियों की चयन की स्वतन्त्रता पर आघात किए बिना भी उन्हें सामाजिक दृष्टि से वांछनीय व्यवहार के लिए अनुप्रेरित कर सकते हैं।

19.7 शब्दावली

स्वःशोध : व्यक्ति द्वारा अपनी निर्णय प्रक्रिया में अपनाए गए मानसिक संकरे गलियारे, जिन्हें वे केवल अपनी किसी अनुभूति के आधार पर चुन सकते हैं।

चयन रूप रचना : वे विभिन्न अभिकल्प जिनमें निर्णयकर्ता को चयन विकल्प प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

अभिज्ञान भार : जानकारी का वह समूह जिसे एक समय में क्रियाशील स्मृति धारण कर सकती है।

हानि विरूचि : निवेशक को लाभ से आनंद की अपेक्षा हानि अधिक दुखदायी लगती है। इसी विरूचि के कारण व्यक्ति यथास्थिति को अपनाए रहते हैं।

ठेलना (छनकहम) : व्यक्तियों की चयन की रूप रचना को प्रभावित करने वाली नीतियां। ये उनके व्यवहार को वांछित दिशा में उनकी चयन की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखते हुए मोड़ देती है।

वर्तमान के प्रति अभिनति : वर्तमान एवं भविष्य के बीच समप्रत्ययन करते समय व्यक्ति की वर्तमान के निकटस्थ प्रति प्राप्ति को दूरस्थ की अपेक्षा अधिक अधिमान देने की प्रवृति।

यथास्थिति अभिनति : वह अभिनति जिसमें व्यक्तियों की वर्तमान दशा के लेकर वरीयता इतनी प्रबल हो जाती है कि वे किसी गैर–अभीष्ट चयन पर ही टिके रहते हैं।

समय का मितिकाटा : व्यक्तियों की भविष्य की प्रति प्राप्तियों को काटावृत करने की प्रवृत्ति इससे वे व्यक्ति वर्तमान के प्रति अभिनत हो जाते हैं।

19.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) Demeritt, A., & Hoff, K. (2019). The Making of Behavioural Development Economics. *History of Political Economy, 50* (S19), 303-322.
2) Kremer, M., Rao, G., & Schilbach, F. (2019). Behavioural Development Economics. In *Handbook of Behavioural Economics: Applications and Foundations 19* (Vol. 2, pp. 345-458). North-Holland.
3) Ranyard, Rob (2019). Economic Psychology. British Psychological Society and Wiley. Chapter 27, Economic Psychology and Pro-Environmental Behaviour (pp. 435-450).
4) Rice, T. (2019). The behavioural Economics of Health and Healthcare. *Annual Review of Public Health, 34*, 4319-447.

19.7 बोध प्रश्नों के लिए उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न–1

1) व्यवहारवादी अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्रिक आदानों का निर्णय करने और वरीयताएं बनाने में उपयोग कर आर्थिक विकास की समस्याओं का अध्ययन करता है।

2) परंपरा से विकास अर्थशास्त्र ने व्यक्तियों को तर्कशील निर्णयकर्ता माना है जो स्वःहित की दृष्टि से सभी लाकतों और हितलाभों का आंकलन एक सुविचारित विवेकशील निर्णय करते हैं।
3) (क) उपलब्धता (ख) प्रभाव करना (ग) प्रेक्षण
4) अतिविश्वास, छोटी संख्याओं के आधार पर प्रेक्षण

बोध प्रश्न –2

1) वर्तमान के प्रति अभिनति टालमटोल और तरलता संरोधों के माध्यम से कार्य करती है। व्यक्ति वर्तमान लागतों और भावी लाभों की तुलना करने के कारण टालमटोल करने लगते हैं। तरलता का संरोध लोगों को स्वस्थतापूर्ण व्यवहार नहीं करने देता, उन्हें इसकी कोई तुरन्त जरूरत नहीं प्रतीत होती ।
2) व्यवहारवादी अर्थशास्त्र इस लालच को दूर करने के लिए चयनों का विन्यास इस प्रकार करने का सुझाव देता है कि लोगों को स्वास्थ्यकर निर्णय लेने का प्रोत्साहन मिले।
3) व्यक्ति वर्तमान दशा में चिपके रहने की प्रवृत्ति से ग्रस्त होते हैं। इसी कारण वे पूर्वोपायी स्वास्थ्य निवेश से कतराते हैं। एक उदाहरणः ये जानते हुए भी कि कोई स्वास्थ्य सेवा प्रदाता कम कीमत पर अधिक सुरक्षा प्रदान करने को तैयार है, वे अपने पूर्व परिचित प्रदाता से जुड़े रहना चाहते हैं।

बोध प्रश्न –3

1) वर्तमान के प्रति अभिनति, उपलब्धता अभिनति और आत्म संयम के अभाव आदि के कारण व्यक्ति शिक्षा में कम निवेश करते हैं।
2) अन्तर्निहित एवं बाह्य संप्रेरणाओं के लिए लक्ष्य और समय सीमाएं निर्धारित करना आदि उपाय अपना कर शिक्षक और अभिभावक बच्चों की टाल मटोल करने की प्रवृत्ति को नियंत्रित कर सकते हैं।
3) कई बार शिक्षार्थी और अभिभावक तुरंत उपलब्ध सूचना का ही प्रयोग कर लेते हैं जबकि और संबद्ध जानकारी भी निशुल्क उपलब्ध होती है। ऐसी स्वचालित विचार प्रक्रिया (व्यवस्था–19) तुरन्त सुलभ जानकारी के आधार पर फैसले कर लेती है। उदाहरणः उच्च शिक्षा को लोग फोरन ही महंगी मान लेते हैं और छात्रवृत्ति आदि की सुलभता पर ध्यान ही नहीं देते। इस कारण अनेक व्यक्ति उच्च शिक्षा की और कदम नहीं उठा पाते।

बोध प्रश्न –4

1) ऐसी अभिनति का मुख्य कारण आज के निर्णय के भावी परिणामों के विषय में अनिश्चितता है। उदाहरण के लिए बिजली, पानी आदि को व्यर्थ करने वाले हमारे व्यवहार के नकारात्मक प्रभाव प्रत्यक्षतः तुरन्त तो दिखाई नहीं देते। पर्याप्रभाव होने में समय लगता है। अतः अधिकांश लोग उन पर्याक्षतियों को लेकर सजग नहीं हो पाते जो उनके क्रिया कलाप करते हैं।
2) यह लोगों की यथास्थिति को अनिश्चित भविष्य पर वरीयता प्रदान करने की प्रवृत्ति ही है।
3) चयन रूपरचना, सामाजिक मानक, विश्वसनीय एवं महत्त्वपूर्ण जानकारी आदि।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 20 आर्थिक विकास में भौगोलिक स्थिति*

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 विषय–प्रवेश

20.2 आर्थिक विकास का बहु आयामी परिप्रेक्ष्य

20.3 भौगोलिक स्थिति क्यो महत्वपूर्ण है?

20.4 स्थानिक विषमताओं का सृजन

20.5 विकास की आर्थिक भौगोलिकताएँ

20.6 सारांश

20.7 शब्दावली

20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

20.9 बोध प्रश्नों के लिए उत्तर/संकेत

20.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य होंगे कि–

- आर्थिक विकास के बहुआयामी–परिप्रेक्ष्यों पर चर्चा;
- एतिहासिक अनुभवों के आधार पर व्याख्या कि विकास के लिए वासतव में भौगोलिक स्थिति क्यों महत्वपूर्ण रही है;
- वर्णन कि विकास की प्रक्रिया के दौरान स्थानिक विषमताएँ किस प्रकार जन्म लेती हैं; और
- विकास की आर्थिक भौगोलिकता पर एक टिप्पणी।

20.1 विषय प्रवेश

जब हम अपने आस–पास विकास के स्वरूप को देखते है। तो हमें खुशी होती है, किन्तु हमें दुख भी होता है जो हमें कुछ सोचने पर विवश कर देता है। सड़कों,

*डॉ. बिक्रमादित्य चौधरी, सीएसआरडी, जेएनयू, नई दिल्ली

भवनों, जैसी ऊपरिसंरचनाओं के स्वरूप और वाहन आदि हमें अवसरों तक पहुँच बनाने और विकास में योगदान करने में सहायता करते हैं। अच्छी चमकती हुई कारें, अच्छे से बनी सड़के और दमकते हुए बहुमंजिला भवन, मॉल, प्लाज़ा, हाथों में एंड्रायड फोन हमें खुशी देते हैं। किन्तु चारों तरफ उठता हुआ धुंआ, मलिन बस्तियां, बहुत टूटी फूटी सड़कों से अन्दरूनी क्षेत्रों तक पहुँचने की विवशता, सड़क किनारे निर्वाह कर रहे दुर्बल गरीब बच्चों नर–नारियों के चित्र चलचित्र, जहां वे भीख मांगते भूख से मरते दिखाई देते हों, नालों की सफाई करते हुए दमघुटकर मरते सफाई कर्मचारी आदि के दृश्य हमें विचलित भी कर डालते हैं। अतः प्रश्न उठता है कि आखिर विकास है क्या? विकास के लाभ सभी तक क्यों नहीं पहुँच पाते? क्या विकास की वरीयताओं को बदला जा सकता है? क्या विकास का विश्लेषण संप्रभु राष्ट्रों के संदर्भ में ही होना चाहिए या इसमें व्यष्टि स्तरीय स्थानिक भौगोलिक दशाओं तथा उनके आसपास के वातावरण एवं परिवेश की विशेषताओं का भी समावेश होना चाहिए? दूसरे शब्दों में प्रश्न यह हैः क्या राष्ट्र एवं प्रान्तीय स्तरों पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP) या राज्य घरेलू उत्पाद (SDP) की संकल्पनाओं से आगे झांकने की भी जरूरत है?

विकास क्या है या आर्थिक विकास किन घटकों से मिलकर बना है? क्या यह वृद्धिशील प्रतिव्यक्ति आय ही है या बेहतर ऊपरी पूर्णगित सुविधा या फिर ऊर्जा का अधिक उपभोग अथवा स्वास्थ्य एवं शिक्षा सुविधाओं तक सभी की समतापूर्ण पहुँच या फिर अनेकानेक चयन और अपने विचारों और चयनों की संप्राप्तियों की संभावनाएँ? ''विकास'' मुख्यतः एक विकसित हो रही संकल्पना है और इसका स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि इसकी परिभाषा कौन कर रहा है? किसी उद्यमी की विकास की परिभाषा में उसके लक्ष्यों या ध्येयों की झलक हो सकती है और इसी कारण उसकी विषयवस्तु किसी दिहाड़ी मजदूर या फिर बीतरागी संत से बहुत भिन्न हो जाएगी। विश्व के विभिन्न भागों में बसे जनसमुदाय, यहां तक कि एक ही देश के अलग स्थानों पर बसे समाजों के विकास बोध और इसी कारण उनकी परिभाषाएँ भी अनेक रूप धारण कर जाती हैं।

आर्थिक विकास विषयक विमर्श अनेक वास्तविक हस्तक्षेपों और व्यवहारों को उचित ठहराते हुए उनकों बढ़ावा देता है। कई बार (या बहुधा भी) उनके जन समुदायों या क्षेत्रीय इकाईयों पर अनापेक्षित या अनचाहे प्रभाव भी हो सकते हैं। विकास साहित्य रचनाकारों की मुख्य धारा में प्रायः सर्वव्यापी पूँजी सघन तकनीक केन्द्रित विकास दृष्टि ही छाई हुई दिखती है। इसे 'स्वयं सिद्ध' सा माना जाता है। किन्तु जोनाथन क्रश (1995) जैसे लेखकों ने विकास की उस 'स्वयं सिद्ध' धारणा पर प्रश्न उठाए हैं। इस पृष्ठभूमि में हमारी यह इकाई एक विचार प्रस्तुत कर रही है कि विकास की

परिभाषा चाहे जैसे भी कर लें, इसे समाज में उस विकास के कारण पैदा हो रही विषमताओं से तो जूझना ही पड़ेगा। अतः विषमता निवारण की विधियों के विश्लेषण में विकास के स्वरूप को महत्व निर्णायक रहेगा। अतः यह इकाई विकास की स्थानिकता पर केन्द्रित है। डेबिड हार्वे के शब्दों में ''स्थानिकता बोध'' ही है जो विकास के स्वरूपों में विविधता पर ध्यान आकर्षित करता है।

उपर्युक्त चर्चा को संक्षेप में रखें तो प्रतीत होता है कि जहाँ कुछ क्षेत्र विकसित हो जाते है। वहीं कुछ दूसरे न केवल वंचित रह जाते हैं, बल्कि कुछ का इस विकास प्रक्रिया में शोषण भी होता है। अतः विभिन्न क्षेत्रिक इकाइयों के बीच विकास प्रक्रिया के समतापूर्ण प्रसार पर ध्यान देने वाला क्षेत्रीय विकास अधिक महत्वपूर्ण है। अतः हमें उन विस्तृत मूलक्षेत्रों को ध्यान में रखकर चलना चाहिए जहाँ शहरी एवं ग्रामीण उपक्षेत्र अविछिन्न रूप से जुड़े हुए हों। इसी क्रम में हम इस प्रकार की समस्याओं पर विचार कर पाएंगेः (i) क्षेत्रीय विषमताएं (ii) जनसंख्या संबंधी प्रश्न, (iii) क्षेत्रिक आर्थिक अवरूद्धता आदि। इसके लिए आवश्यक है कि केवल किसी क्षेत्र विशेष नहीं बल्कि साथ ही साथ विभिन्न क्षेत्रों तक फैली (i) सामाजिक संरचनाओं, (ii) औद्योगिक संगठनों, (iii) प्राकृतिक संसाधन धारिताओं आदि पर आधारित विकास संरचनाओं पर समन्वित रूप से चर्चा की जाए।

20.2 आर्थिक विकास का बहुआयामी परिप्रेक्ष्य

अतः एक बात तो स्पष्ट है कि आर्थिक विकास का अध्ययन क्षेत्रीयता के अनेक पैमानों, अर्थात अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, अंतर्प्रान्तीय, अंतर्जनपदीय आदि पर करने की जरूरत है। जैसे ही हम अध्ययन के पैमाने को बदलते हैं, विभिन्न कारकों और चरों के अर्थ भी बदल जाते हैं। इस दृष्टि से विकास में समाहित है। (i) योग्यता–क्षमता, (ii) परिसंपदा (भौतिक एवं सामाजिक परिसंपदा) तथा (पपप) गतिविधियां/ये तीनों मानवीय प्रगति को अधिकतम करने के लिए अभिप्रेरित होती हैं। इस रूप में (i) प्रौद्योगिकी, (ii) परिसंपदा सुलभता, (iii) शासन तन्त्रीय अन्तक्रियाएं, (iv) नागरिक समाज, (v) बाध्य एवं आन्तरिक संगठन आदि पर निर्भर विकास की संकल्पना बहुत जटिल हो जाती है। इनमें से अन्तिम, अर्थात् बाध्य एवं आन्तरिक संगठन न केवल विकास की दिशा के निर्धारण की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते है। बल्कि इनका विकास के परिणामों के वितरण या फैलाव पर भी प्रभाव होता है। यहां आप यह प्रश्न उठा सकते हैं कि एक व्यक्ति समूह के विकास से अन्य समूहों की आजीविका भी क्यों संकट में पड़ जाती है? आंकड़े दर्शा रहे है। कि बृहद स्तर पर विकास के मामलों में (किसी नदी पर बांध आदि) मेद्यताग्रस्त समुदायों का विस्थापन अवश्य हुआ है। ये

विकश्व के सभी भागों में देखा गया है। अतः कहा जा सकता है कि सभी देशों में विकास कार्य तथा मेद्याग्रस्त जन–समुदायों के विस्थापन साथ–साथ चल रहे हैं। विकास की उपर्युक्त विडम्बना की कोई सीधी व्याख्या नहीं है। वास्तव में विकास का इतिहास ही इसका प्रमाण है। अन्य शब्दों में, जिस प्रकार हमने विकास किया है, पहले कृषि, फिर उद्योग, बांधों के निर्माण, वन्य एवं खनिज संसाधनों के उपयोग एवं दुरूपयोग आदि, सभी के साथ–साथ बड़े पैमाने पर विस्थापन भी हुए हैं। जिस प्रकार हने वातावरण का विनाश किया है, नदियों एवं जलाशयों को प्रदूषित किया है, उससे जल आधारित अर्थव्यवस्था से आजीविका पाने वाले समुदायों पर घातक आघात तो हुए ही हैं। वनों, खनिजों जैसे प्राकृतिक संसाधनों के निरंतर विनाश ने प्रकृति के निकट बसे समुदायों को मेद्यताग्रस्त बना दिया है। हमारे चारों ओर ऐसे कितने उदाहरण फैले हुए हैं।

अतः हमें विकास को एक अलग पैमाने और विभिन्न संदर्भों में समझना होगा। आप जानते ही है। कि विश्व विकास के आधार पर बंटा हुआ है। विश्व को अलग–अलग विकास खण्डों में बांटते समय विकास की किस धारणा का प्रयोग किया गया है? क्या इस विषय में कोई समझौता हुआ है कि एक परिभाषा विशेष का प्रयोग कर देशों का विकसित, विकासशील एवं अल्प विकसित, तीन प्रखंडों में विभाजन होगा? या फिर अधिक विकसित एवं कम विकसित देशों के दो प्रखंड बनाए जाएंगे। यह भी मजेदार बात रही है कि त्रिखंडीय विभाजन को विकसित देशों ने ही चुनौती दी है। उनका कहना है कि सभी देश एवं निरंतर विकास कर रहे हैं वे स्वयं भी। इस तर्क का प्रयोग कर विकसित देशों ने ऊर्जा उपभोग तथा उत्सर्जन सीमाओं में छूट की मांग की है। वास्तव में सौदेबाजी के माध्यम से विश्व की परिभाषा करने की शक्ति, बहुराष्ट्रीय संगठनों (विश्व बैंक आदि) तथा यू.एस.ऐड., डी.एफ.आई.डी. आदि पर नियंत्रण विकसित देशों को शेष विश्व के लिए परिभाषएं गढने में सक्षम बनाता है। इस संदर्भ में आर्थर एक्वेबार (1995) का यह कठन याद आ जाता हैः ''विकास ऐसा उपकरण है जिसे विकसित देशों द्वारा तीसरे विश्व के विषय में जानकारियां पाने और उन पर अपनी शक्ति तथा हस्तक्षेप थोंपने के लिए किया जाता है। ऐसी ही सहलग्नता ने तीसरे विश्व के देशों का निरूपण किया है। यह अन्य देशो, क्षेत्रों, समाजों तथा उनके पर्यावरण आदि पर अपने नियंत्रण और प्रबंधन द्वारा ''अधिकार'' जमाने का ही एक रूप है। विकास साहित्य में ऐसे निरूपण में पाश्चात्य देशों की शक्ति का प्रयोग एवं हस्तक्षेप निरंतर दिखाई देता है।

मौटे तौर पर तो आर्थिक विकास में मौलिक एवं सामाजिक ऊपरी संरचनाओं में सुधार शामिल होना चाहिए। ऐसे सुधार सामाजिक राजनैतिक विभाजनों से ऊपर उठकर समाज के सभी सदस्यों के जीवन स्तरों को प्रभावित करते हैं। ऐसा आर्थिक

विकास कितने ही लोगों को संसाधनों एवं अवसर प्रदान करता है तथा विभिन्न समुदायों के लिए आजीविका के अवसरों में सुधार करता है। इसका अर्थ है समूची सामाजिक व्यवस्था उन्नति की ओर चल पड़ती है। इस दृष्टि से आर्थिक विकास की व्याख्या ऐसी प्रक्रिया के रूप में हो सकती है, जो जन सामान्य को सुलभ सकारात्मक स्वातन्त्रय की प्रक्रिया का विस्तार करें। यह अधिक मूल्यवान विधि से जीवन यापन की अधिकारिकताओं और योग्यता–क्षमताओं के विस्तार की ही प्रक्रिया है। अतः यह जनसामान्य के जीवन के सुयोगों में सुधार की ही बात है। अतः इसे ''निरंतर चल रही गरीबी पर पार पाते ही समग्र रूप से मानवीय विकास सुनिश्चित करने में सहायक एक प्रक्रिया है। इसका अर्थ ऐसी संवृद्धि युक्ति से है जो औद्योगिक–शहरी तथा कृषि औद्योगिकरण दोनों का पक्ष लेती हो। अंतर्राष्ट्रीय सहायता पर आधारित विकास की यह अवधारणा द्वितीय महायुद्धोपरांत विमर्श (उदाहरणः ट्रूमैन, 1949) पर आधारित है। इसमें कहा गया है कि यह सभी बेहतर स्थानों पर रहने वालों का कर्तव्य है कि वे विश्व के अल्प विकसित क्षेत्रों को विकास करने में सहायता प्रदान करें।

विभिन्न देशों के बीच ही नहीं बल्कि प्रत्येक देश के अलग–अलग क्षेत्रों में भी इन दो कारकों में अंतर पाये जाते हैंः (i) अर्थतन्त्र का वित्तीय स्थस्थ्य तथा (ii) वित्तीय समाहन (या विलगाव) के स्तर। इनके कारण विभिन्न देशों तथा देश के भीतर विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास के स्तरों में अंतर आ जाते हैं। विकास की प्राथमिक अवधारणा है कि ''विकास सदैव समान दर से नहीं होता और यह सभी स्थानों पर एक साथ भी नहीं होता। अतः यहां ये महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैंः (i) कुछ देशों को विकसित बनाने में किन कारकों का योगदान है, (ii) क्या वैसी ही दशाओं की रचना कम विकसित देशों/क्षेत्रों में की जा सकती है ताकि वे भी विकास पर पायें, (iii) किसी भी विधि विशेष से मापित विकास के स्रोत क्या हैं और क्या वे सभी क्षेत्रों में समान रूप से पाये जाते हैं, तथा (iv) सभी क्षेत्रों में एक साथ विकास क्यों नहीं होता।

उपर्युक्त प्रश्न इन बातों को सामने ला देते हैंः (i) औद्यागिक क्रांति सहित विश्व की आर्थिक प्रक्रियाओं का इतिहास, (ii) विश्व के अन्य भागों में इसका प्रसार–संचरण, (iii) यूरोप द्वारा उपनिवेश बनाने का प्रकल्प, (iv) औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा तीसरे विश्व के संसाधनों पर नियंत्रण और (v) दो विश्व युद्ध एवं युद्धोपरांत विश्व व्यवस्था में आए परिवर्तन। वास्तव में 1955 में बांडुग सम्मेलन में एकत्र देशों ने स्वयं को

''तीसरा विश्व'' नाम दिया था– ताकि उस समय तक दो खेमों में बंटे विश्व में वह अपनी अलग पहचान बना सके। इन देशों के (i) राजनीतिक उद्‌गम समान थे,

रेखाचित्र 20.1 : उपनिवेश उपरांत संवृद्धि सिद्धांत

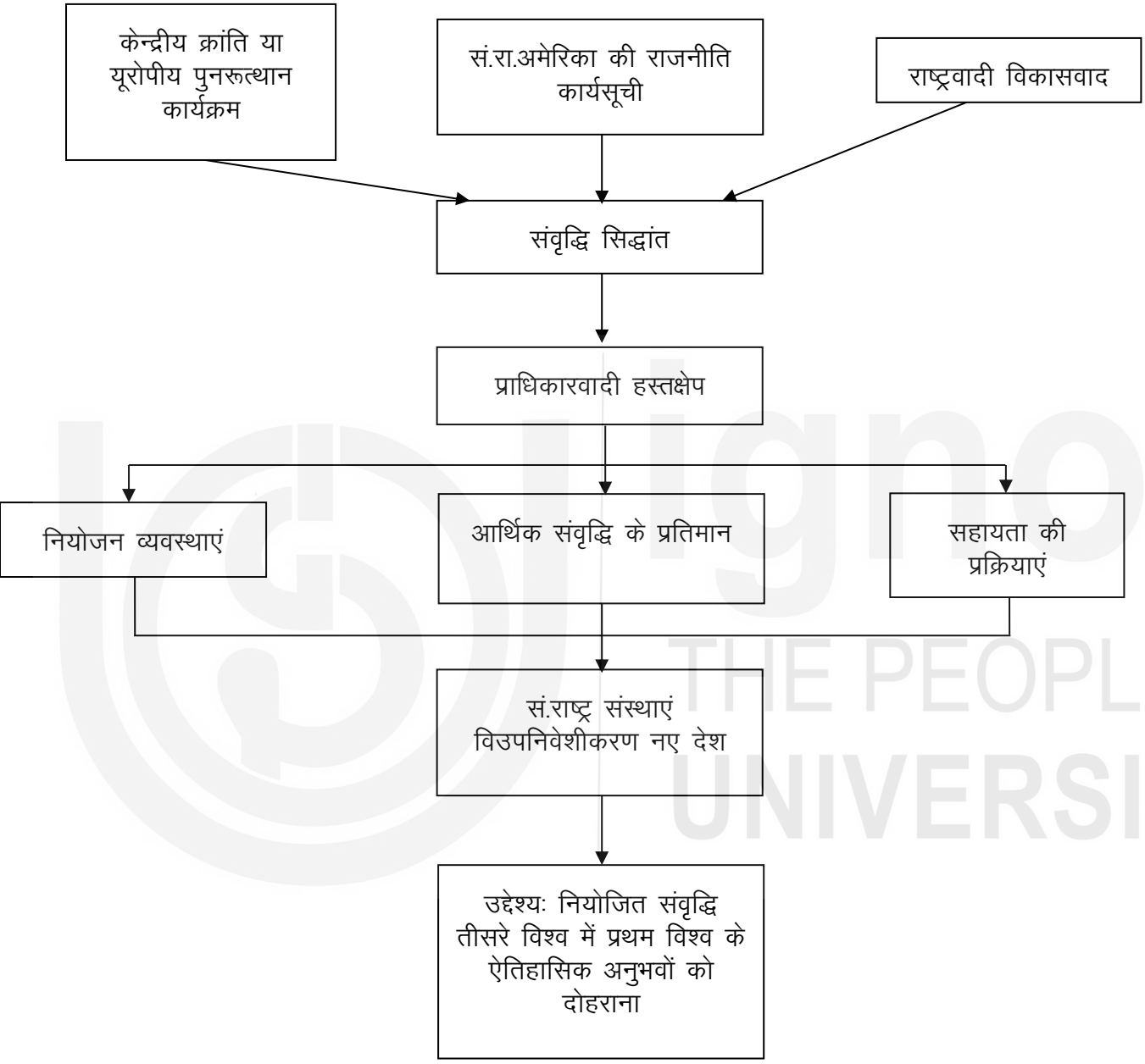

(ii) इनमें उपनिवेश विरोधी एवं खेमो के विरूद्ध संप्रेरणाएं विद्यमान भी और (iii) सभी में गरीबी का सांझा अभिलक्षण था। अतः तीसरे विश्व के दृष्टिकोण से विकास का स्वरूप पश्चिमी देशों से पृथक ही था। विकास के स्वरूप में अन्तरों की (i) सामाजिक एवं उत्पादन संबंधों के स्वरूप, (ii) सांस्कृतिक मूलाधार, (iii) संसाधन संपन्नता आदि के अधीन परंपरागत व्याख्याएं की गई हैं। युद्धोपरांत काल में पर्यावरण निर्धारितावाद एक सरल/आसान्न व्याख्या बन गया, ठीक ही जैसे युद्ध पूर्व

विकास के अभाव के प्रश्नों को शांत करने के लिए जलवायु और प्राकृतिक कठिनाइयों को दोष दे दिया जाता था। किन्तु यह पर्यावरण निर्धारितावादी विचार एक समान पारिस्थितिकीय परिवेश के सभी क्षेत्रों में एक समान विकास नहीं होने की कोई व्याख्या नहीं कर पाया। फिर प्रजातियता का विचार मंढ़ा गया और वह भी विश्व युद्ध के बाद निरस्त हो गया।

युद्धोपरांत काल में विकास के स्वरूपों पर प्रश्नों के उत्तर देने के लिए अलग–अलग आर्थिक व्याख्याओं का प्रयोग किया गया। डी.नार्थ, डब्ल्यू. इसार्ड, एच. पर्लोफ, एफ. पेरोक्स जैसे विद्वानों ने गहरे पानी की बन्दरगाहों जैसे प्राकृतिक संसाधनों एवं श्रम के क्षेत्रीय संसाधनों में अन्तर के आधार पर संवृद्धि स्वरूपों में अन्तर की व्याख्या का प्रयास किया। आगे चल कर भौतिक और सामाजिक ऊपरी संरचना तथा संघहीकरण को भी व्याख्याकारी चरों में जोड़ दिया गया। पश्चिमी दाताओं द्वारा अल्पविकसित देशों को विकास सहायता दिए जाने में ये दो बातें बहुत महत्वपूर्ण रही (i) क्षेत्रीय बाजार का विस्तार ताकि (ii) संचयी तुलनात्मक लाभों की प्राप्ति हो सकें। कृषि बहुत कम ही संचयी संवृद्धि लाभ प्रदान कर पाती है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के सापेक्ष कृषिक संवृद्धि की आय की लोच इकाई से कम पायी गई है। इसके विपरित खनिजों एवं अन्य संसाधनों पर आधारित उद्योगों की मांग की आय लोच बहुत अधिक आंकी गई है।

बोध प्रश्न –1

1) विकास के तीन मुख्य घटक बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) मानवीय प्रगति को अधिकतम बनाने की दृष्टि से विकास की संकल्पना जटिल क्यों बन जाती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) किस दृष्टि से विकास ''निरूपण एवं निर्माण'' का एक फलन है? आर्थरों एस्कोबार ने इस विचार को किस प्रकार पेश किया था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) वे दो मुख्य कारक बताएं जिनके कारण न केवल विभिन्न देशों में बल्कि एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी विकास में अंतर होते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) वे तीन अभिलक्षण बताएं जो स्वयं को ''तीसरा विश्व'' कहने वाले देशों में सांझे थे।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.3 भौगोलिक स्थिति क्यों महत्वपूर्ण हैं?

हम अलग–अलग भौगोलिकताओं या विश्व के हिस्सों में रहते हैं। एक देश में भी कुछ लोग महानगरों में तो कुछ ऐसे पहाड़ी और वन क्षेत्रों में भी रहते हैं जहां पहुँचना सरल नहीं होता। यही नहीं, भारत में ही विभिन्न प्रांत, जैसे कि उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र तथा एक ही प्रांत में विभिन्न भौतिक एवं पर्यावरी अभिलक्षण मिल जाते हैं (प. बंगाल में डेल्टा, हिमालयी पर्वतीय तथा जंगल महल) जो विकास के

पृथक पृथक सोपानों पर हैं। हर किसी स्थान की कोई न कोई अवस्थिति होती है और इसी कारण प्रत्येक स्थान की भौगोलिकता भी होती है। ये पर्वतीय, वन्य, उपजाऊ मृदा आदि किसी न किसी भौतिक लक्षण पर आधारित हो सकती है या फिर प्रयोग में आ रही प्रक्रियाओं पर जैसे कि पवन ऊर्जा, जल विद्युत या भूकंप आशंका या फिर ऐसी मानवीय बस्तियां जिनके अपने विशिष्ट उत्पादन एवं उत्पादक संबंध होते हैं। हम किसी सुपर मार्केट में जाएं, अस्पताल में या विश्वविद्यालय में हमें विभिन्न दूर–दूर के स्थानों, परिवेशों तथा पृथक पृथक राजनीतिक तन्त्रों के अधीन उत्पादित वस्तुएं और पर्दार्थ एक साथ दिखाई दे जाते हैं प्रत्येक स्थानीय वास्तविकता में चाहे भौतिक अथवा नृशास्त्रिक या किसी क्षेत्र में व्याप्त दोनों ही के कारण अपनी अपनी परिवन, व्यापार, व्यापार की शर्तें आदि विकसित हो जाती हैं।

आज भी 1954 में फ्रांसिस पेरौक्स (1954) के समय में 7 दशकों बाद भी क्षेत्रीय विकास सिद्धांतों में मुख्य प्रश्न यही बना हुआ है कि कुछ क्षेत्र अन्य की अपेक्षा अधिक तेजी से क्यों विकास कर जाते हैं? हमें विभिन्न क्षेत्रों (जैसे केरल और बिहार) में सामाजिक क्षेत्र व स्वास्थ्य परिचर्या के स्तरों में इतने अन्तर क्यों दिखाई देते हैं और इन अन्तरों को स्थायी बनाए रखने के लिए क्या जिम्मेदार है। पिछले 6–7 दशकों से अध्येताओं के अनेक समूह इन्हीं मुख्य प्रश्नों पर अनुसंधान कर रहे हैं। पहले जो बाते केवल अर्थशास्त्रियों एवं भूगोलविदों के कार्यक्षेत्र में भी आज ऊपर अनेक प्रकार के समाजशास्त्री (जैसेः सामाजिक विज्ञान, राजनीतिशास्त्र) भी अन्वेषण कर रहे हैं। एक और वैश्विकरण से अभिभूत होकर ''फासलों का अंत और भौगोलिकता का अंत'' जैसी घोषणाएं सुनाई दे रही है। वहीं क्षेत्रीय विकास अध्ययनों में भी रूचि में वृद्धि हो रही है। यह अवश्यभावी भी है, क्योंकि जो नवप्रर्वतनों और राष्ट्रीय आर्थिक संवृद्धि के चालक हैं उनका मूल स्वरू पतो स्थान–वितान से ही जुड़ा है। इसी को हार्वे ने ''स्थानिकता बोध'' कहा है। स्पष्टतः पृथ्वी के धरातल के स्वरूप में भिन्नताएं है और उन्हीं के कारण वहां रहने वालों की प्राकृतिक घटनाक्रमों और प्रक्रियाओं से संबंधों और उन प्रतिक्रियाओं में भी अन्तर रहते हैं। इन संबंधों में मध्यस्थता विश्व के विभिन्न भागों में प्रौद्योगिकी और नवप्रवर्तनों के स्तरों द्वारा की जाती है। जीवनशैली में अन्तरों की विद्यमानता और उनके बने रहने के कारण विशेषरूप से अर्थशास्त्र के अध्येताओं के लिए यह अनिवार्य बना देते हैं कि वे (i) विकास के स्वरूप या प्रकृति का आंकलन करें और (ii) विश्व के विभिन्न भागों में दिखाई दे रहे विकास परिणामों का विश्लेषण भी करें।

विश्व के विभिन्न भागों में तकनीकों के विविधीकृत स्तरों का विकास कैसे हुआ है और विभिन्न देशों की इन तकनीकों तक पहुँच के अलग–अलग स्तरों का निर्धारण

किस प्रकार होता है? ये निर्धारण होता है: (i) शक्ति के अनुक्रम (ii) देश में प्रचलित सामाजिक एवं राजनीतिक तन्त्र व्यवस्था (iii) सरकार का स्वरूप (iv) शासन व्यवस्था के आयाम आदि द्वारा। आपने पहले भी पढ़ा है कि विश्व के देशों के विकास के स्तर अलग–अलग है। (चाहे हम आर्थिक परिप्रेक्ष्य की चर्चा करें या सामाजिक अथवा मानवीय विकास की पुरातन शास्त्रिक दृष्टि से हम सदियों पूर्व की वास्तविकता पर भी विचार कर सकते हैं कि विभिन्न भौगोलिकताओं के किस प्रकार अनुकूल किए गए थे और एक जैसे पारितांत्रिक क्षेत्रों में उत्पादन प्रक्रियाओं में नवप्रवर्तन पाने के लिए पृथक पृथक तकनीकें किस प्रकार अपनाई गई थी। हम अपने ही देश के गुर्जर समुदाय के विषय में जानते हैं, जो मवेशी पालन करते थे और उनको साथ लेकर एक क्षेत्र से दूसरे तक आते जाते रहते थे। कुछ समुदायों ने ऐसे पौधों की पहचान कर ली थी जिनकी खेती करके वे उसी उत्पादन के सहारे जीवन यापन करते थे। कृषि उत्पादन के बचे अंश को वर्षभर के लिए संभाल कर रखा भी जा सकता है– यही नहीं जब उस कृषिक समुदाय के और अधिक भूक्षेत्र पर नियंत्रण सुलभ हो जाए तो यह अधिशेष अंश और अधिक हो जाता था। यहीं पर समाज में विषमताओं का संचार प्रारंभ हुआ था। अतिरेक का अन्य समुदायों के साथ व्यापार प्रारंभ हुआ। घुमन्तु समुदाय कुछ मवेशियों को अन्न के बदले देने को तैयार हो जाते थे। बनवासी शहद एवं काष्ठ आदि के बदले अनाज पाने को उत्सुक होते थे। आगे चलकर औद्योगिक क्रांति हुई तथा जब उपनिवेशों तक फैल गई तो व्यापार में भी बड़े बदलाव दिखाई देने लगे। इसके साथ ही विकास का स्वरूप भी बदल गया। हम जानते हैं कि किस प्रकार भारत में ''सभ्यता का पलना'' कहलाने वाला गांगेय क्षेत्र वस्तुतः पिछड़कर रह गया क्योंकि (i) यहां भूमि का अतिशय विदोहन हुआ और (ii) कई विकास प्रकल्पनों के साथ व्यापक परिस्थितिकीय उथल पुथल उभर कर आई।

आइए अब इस प्रश्न का उत्तर दें: किसी क्षेत्र का क्या अर्थ है? क्या क्षेत्र अभिलक्षणों पर आधारित है या प्रकार्यों पर अथवा किन्हीं विचारों पर? ये औपचारिक क्षेत्र हैं या प्रकार्यात्मक? एक क्षेत्र की परिभाषा उसकी प्राकृतिक परिसंपदाओं के आधार पर हो सकती है, उसकी उत्पादक गतिविधियों द्वारा या ऐसे किसी भौगोलिक तत्व द्वारा भी जिसे अलग से पहचाना जाता हो (या जिसके आधार पर सीमा निर्धारण संभव हो) कुछ विद्वान क्षेत्रों की परिभाषा के लिए एक रोचक सुझाव दे रहे हैं। वे प्राकृतिक संसाधन तन्त्रों एवं मानव समुदायों के बीच परस्पर निर्भरता के आधार पर क्षेत्रों की परिभाषा करना चाहते हैं। मार्कूसेन (1987) ने एक क्षेत्र को ''ऐतिहासिक रूप से विकसित साथ लगते हुए क्षेत्र में बसे समाज द्वारा परिभाषित किया है जिसमें ये

विशेषताएं हो, (i) एक भौतिक पर्यावरण, (ii) एक सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश हो तथा (iii) अन्य क्षेत्रों नगरों और राष्ट्रों एवं भूखंडों से अलग स्थानिक संरचना हो। पेरोय आदि ने भौगोलिक वितान को 'सामान्य' ही बताया है। अतः हम जिस प्रकार वितान की परिभाषा करते हैं वही उस प्रक्रिया को समझने के दृष्टिकोण की रचना कर देती है जो अन्तः विश्व के विभिन्न भागों में विकास के अलग–अलग स्तरों की रचना कर देता है। विश्व के प्राकृतिक संपदा संपन्न देश सबसे अधिक तो क्या प्रायः ठीक से विकसित क्षेत्र भी नहीं कहे जा सकते। विश्व स्तर पर उदाहरण स्वरूप ब्राजील के मिनास गारिस प्रांत को लें या फिर भारत के खनिज संपदा संपन्न प्रांतों को। ये साफ साफ दर्शा रहे हैं कि खनिजों में संपन्नता के बावजूद वे क्षेत्र अल्पविकसित ही रह गए हैं।

औद्योगिक समाज बाजार चालित रहे हैं जहां किसी उद्योग विशेष के लिए आवश्यक कच्चे माल के निकट ही शहर थे तथा वे उद्योग भी उन्हीं शहरों में स्थापित होते चले गए। ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस और सं.रा.अमेरिका के उदाहरण दर्शाते हैं कि जब (i)कोयला और पैट्रोलियम अधिकांश उद्योगों के लिए ऊर्जा के स्रोत थे, (ii) लौह अयस्क अभ्रक जैसे कच्चे माल के स्थानिक भण्डार थे और (iii) गन्ने, कपास, रबड़ आदि कृषि उत्पादों की स्थानीय उपज होती थी वहां बर्मिंघम, लीड्स, पेन्सिलवानिया, मानचेस्टर, शिकागो जैसे शहर विकसित हो गए। परिवहन का प्रमुख माध्यम तो सागर आधारित था और लंदन, मुम्बई, जोहन्सवर्ग, तोक्यों, शंघाई जैसे व्यापार केन्द्र 19वीं और 20वीं शताब्दियों में उदित हुए।

बोध प्रश्न –2

1) विश्व में अलग–अलग स्थानों पर उभरकर आई तकनीकों के विभिन्न स्तरों तथा भिन्न देशों में इन तकनीकों के विभिन्न स्तरों तक पहुँच के निर्धारक बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) वे दो कारक कौन से हैं जिन्होंने एक विकसित क्षेत्र की अवस्था को विकसित से अल्पविकसित में बदल दिया?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) मार्कूसेन ने किन अभिलक्षणों के आधार पर एक क्षेत्र की परिभाषा की थी?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

20.4 स्थानिक विषमताओं का सृजन

अनेक पैमानों के अनुसार विश्व के विभिन्न भागों में बसे जन समुदायों के बीच अतिविशाल आर्थिक अन्तराल होने के तथ्य को अनेक दस्तावेजों में दर्ज किया गया है। किन्तु स्थानित विषमताओं के सृजन एवं पुनःसृजन के प्रश्नों पर चर्चा करते समय यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि उक्त आर्थिक घटक विषमता का एक मात्र एवं एकमेव अनिवार्य घटक नहीं है। वैश्विक स्तर पर उत्तर और दक्षिण के निवासियों के जीवन स्तरों में उतनी ही विविधता एवं विषमता दिख जाएगी जितनी किसी महानगर की गगनचुंबी इमारतों या चौकीदार–चहारदीवारी से आवृत घरों के निवासियों और सड़क किनारे पड़े हुए बेघरबार लोगों के बीच होती है। अतः यह समझना जरूरी है कि इस विषमताग्रस्त विश्व की निर्माण की प्रक्रिया क्या है।

विश्व स्तर पर आर्थिक विकास को समझने के लिए हमें यह याद रखना चाहिए कि पश्चिमी यूरोप में 15वीं से 19वीं सदियों के बीच पूंजीवाद के उदय के साथ संभव हुए आर्थिक बदलाव का महत्व क्या था। यूरोप ने उन घटनाक्रमों का पूरा लाभ उठाया। वाणिज्यवाद के प्रारंभिक वर्षों में ही उने विश्वविजय अभियान प्रारंभ कर दिया था (सौल, 2006) इसके बाद दुनिया ने विश्व स्तर पर (i) वर्ग, (ii) प्रजाती और (iii) नृशास्त्रिक स्थानिकताओं के अनुक्रमों को उभरते हुए देखा। इसके वैश्विक जनसमुदाय के अधिकांश का आर्थिक सामाजिक संभावनाओं के लिए महत्त्वपूर्ण और अनेक बार तो विकलांगताकारी प्रभाव रहे। इस तथ्य को मिर्डल (1950 का दशक) तथा फ्रैंक (1960 का दशक) एवं अन्य विद्वानों ने बहुत स्पष्ट रूप से उजाकर किया

है और उसी के आधार पर यह मुहावरा बन गया कि ''गरीब देश इसलिए गरीब है कि वे गरीब हैं।'' एरीगी (1991) ने लिखा है कि वैश्विक संपन्नता कर अनुक्रम एक दुलंध्य नियम से बंधा हुआ दिखाई देता है। वह 'यथा स्वरूप बना ही रहता है, चाहे अनुक्रम के निचले सोपानों वाले देशों की सरकारें कुछ भी करें या न करें। उन्होंने आगे व्याख्या करते हुए कहा है कि वे चाहे वैश्विक पूंजी चक्र से जुड़ी रहें या उनसे विच्छेद कर ले, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शक्ति एवं प्रतिष्ठा पाने का प्रयास करें या न करें, अपने जनसमुदायों के बीच विषमताओं का निवारण करें या न करें, विश्व की धन–संपदा अनुक्रम तो पूर्ववत् ही बना रहेगा। उस समय के बाद से हुए अनेक अध्ययन ने संपना संकलन और आबंटन के स्वरूपों को लेकर एरिगी के विश्लेषण की पुष्टि ही की है। वास्तव में समय गुजरने के साथ–साथ विश्व संपदा के कुछ एक हाथों में सिमटने का ही साक्षी बना है, उसके व्यापक रूप से आवंटन का नहीं। वर्ष 2020 की एक सं.राष्ट्र की रिपोर्ट ने बताया है कि विभिन्न देशों के बीच विषमता कुछ कम हुई है किन्तु देशों में व्याप्त आंतरिक विषमताओं के और अधिक गहन होने के साक्ष्य मिल रहे हैं। फिर भी उत्तरी अमेरिका वासियों की औसत आय सहरानुपात अफ्रीकावासियों सं 16 गुना अधिक तो है ही। विश्व का तीन चौथाई समुदाय उन देशों में बसा है जहां विषमताओं में वृद्धि हुई है। महामारी पूर्व के आंकड़े बता रहे हैं कि 1918 में केवल 26 अधिकतम व्यक्तियों का उतनी संपादा पर अधिकार था जितनी पर शेष विश्व की आधी आबादी का था। धनिकतम 1 प्रतिशत की आय का अंश पिछले दो दशकों में निरंतर वृद्धिशील रहा है। सभी पैमानों पर स्थिति गंभीर है, चाहे आप (i) देश के आन्तरिक स्तर की चर्चा करें, (ii) किसी एक प्रांत की या फिर (iii) किसी शहर की।

आय और संपदा अन्तरालों की विषमता मानवीय एवं सामाजिक विकास के अन्तरालों में भी झलकता है। यह बात भी देशों के बीच तथा उनके अपने आन्तरिक स्तरों पर वैध रहती है। मानव विकास रिपोर्ट 2019 ने स्पष्ट किया है कि विषमताएं न केवल सर्वव्यापी हैं, इनमें वृद्धि को लेकर चिन्ताओं में भी वृद्धि हो रही है, सारे विश्व के वासी, उनके राजनीतिक विचार कुछ भी हों, अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि उनके अपने देश में तो आय की विषमता कम होनी ही चाहिए। धारणीय विकास की 2030 की विषयसूची की संप्राप्ति के मार्ग में मानव विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न आयामों में व्याप्त विषमता एक बड़ी बाधा बन चुकी है। अतः विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष सहित सभी संगठन वृद्धिशील विषमताओं को लेकर चिन्ता व्यक्त कर रहे हैं और अंतर्राष्ट्रीय तथा देशों की आन्तरिक विषमताओं में गैरबराबरी को कम करने का आग्रह कर रहे हैं। किन्तु फिर भी सत्य यही है कि विषमताएं

निरंतर एवं व्यवस्थित रूप से वृद्धिशील ही हैं। लंदन दंगों (2012) जैसी अनेक वीभत्स घटनाओं में विषमता की बड़ी भूमिका रही है। विल्किन्सन और पिक्केट ने दर्शाया है कि विषमता न केवल सामाजिक संबंध सूत्रों को ध्वस्त कर देती है बल्कि अधिक अपराध और हिंसा का कारण भी बन जाती है। अतः उन्होंने तर्क दिया है कि धन संपदा, शिक्ष और सामान्य क्षेम–कल्याण के पटल भी कम समताशील समाजों का निष्पादन निकृष्ट ही रहता है। अतः समता की प्राप्ति का प्रयास केवल एक सामाजिक अनिवार्यता नहीं है, यह केवल गरीब समुचदाय के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि सामाजिक सामन्जस्य और क्षेम–कल्याण के लिए आवश्यक है। अर्थव्यवस्था में स्थिरता के लिए तो यह एक अत्यावश्यक शर्त जैसी है। सर्वाधिक विषमताग्रस्त, जैसे सं.राज्य, ब्रिटेन, पुर्तगाल और सिंगापुर की सामाजिक समस्याएं जापान, स्वीडन और नार्वे जैसी कम विषमता वाली अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में कहीं अधिक गंभीर है।

यह तर्क कि संसाधनों के आवंटन में अंतर होने के कारण समरूपतापूर्ण संवृद्धि के लिए उपयुक्त उत्पादन की दशाएं स्थान पर उभर नहीं पातीं विकास के स्वरूपों में अन्तर और गरीबी बने रहने की एक बहुत कमजोर व्याख्या है। अब यह बात अच्छी तरह से स्वीकार हो रही है कि संसाधनों, प्रौद्योगिकी संस्कृति आदि के अभाव के लिए अल्पविकास कोई पूर्व शर्त नहीं है। यह तो वास्तव में एक परामर (निर्भरतापूर्ण) विकास या खण्डित, विकृत और संधिविच्छेदित विकास है। इसके कारण यह हैं: (i) देशों और समाजों के बीच लेनदेन तथा (ii) आर्थिक अतिरेक का अन्यत्र अंतरण। एस., अमीन, ए.फैंक ए इम्मेनुअल, आई.वालरस्टीन आदि ने तर्क दिया है कि उपग्रह या अधीनस्थ क्षेत्रों ने पारंपरिक पूंजीवादी स्वरूप का आर्थिक विकास तो सबसे अधिक उस समय किया है जब उनके शासक देशों के साथ संबंध बहुत ही शिथिल या दुर्बल थे। अतः अधीनस्थ पूंजीवाद स्वमेव विलक्षण नहीं है। यह तो पूंजीवादपूर्व सामाजिक रचना पर निर्भर करता है।

20.5 विकास की आर्थिक भौगोलिकताएं

यदि किसी स्थान की भौगोलिकता पर विचार किए बिना ही विकास को स्थानिक रूप से नियत कर दिया जाए तो विकास संबंधी कोई भी चर्चा सार और संगतिपूर्ण नहीं रह पाएगी। अतः स्थानिकता की उपमाओं का प्रयोग सदैव इन कार्यों के लिए किया जाता है: (i) यह परिभाषित करने के लिए कि विकास क्या है तथा (ii) यह व्याख्या करने के लिए कि विकास विभिन्न क्षेत्रिक इकाईयों और विभिन्न भौगोलिकताओं में बसे जन समुदायों के साथ क्या कर देता है।

उद्योगधारित शहरीकरण और औद्योगिक विकास तभी तक स्पष्ट रहते हैं जब उनकी परिभाषा मूल्य वृद्धि या सुधार करने के रूप में की जाती है। कहा जा सकता है कि इतिहासपूर्व काल में कृषि आरंभ होने से पूर्व भी ऐसी विकास की धारणाएं विद्यमान थीं। इस रूप में औद्योगिक अथवा गैर कृषिक विकास पर आधारित विकास की संकल्पना औद्योगिक क्रांति से कहीं पुरातन हो जाती है। इसका अर्थ है कि ऐसी गतिविधियों का किन्हीं स्थानों पर संकुलन तथ्यों द्वारा ज्ञात होता है। ऐसे संकुलनों का स्वरूप विभिन्न भौगोलिक सीमाओं के पार भी संगतिपूर्ण (इसी प्रकार का) रहा है।

अपने उत्पाद स्थल से दूर के विस्तृत बाजारों के लिए औद्योगिक उत्पादन प्रारंभ होने पर निर्भरता तथा उत्पाद विशिष्टीकरण में निखार आया और यह एक सह–संकुलन का रूप धारण कर गया। इससे जीवन की औद्योगिक शैली व्यापार और जन–संकुलन के साथ संबंधित हो गई। दूसरे शब्दों में अब उत्पादन जीवन निर्वाह तक सीमित नहीं रहा वह अधिक संग्रह और अधिकतम लाभ अर्जित करने से प्रेरित हो गया। ये लाभ उन्हीं को मिलते हैं जिनका उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण हो और जो व्यापार की शर्तें निर्धारित करने में समर्थ हों। औद्योगिक क्रांति के बाद उद्योगों के अपने मूलक्षेत्र से बाहर प्रसार से विश्व जनसंख्या के एक बड़े अंश का औद्योगिक एवं शहरी वातावरण से संबंध आया। इसकी स्थानिक स्थिति शहरी विकास के अधिक पक्ष में रही। शहरों का स्थान तो स्थिर ही रहा– यही बात अर्थशास्त्र की मुख्य धारा में अनदेखी होती रही है। विकास में भौगोलिकता के महत्व को पुनः बल देने के विचार के प्रणेता पॉल क्रुग्मैन को ही यह बात समझाने का श्रेय जाता है। अमेरीकी भूगोलविद् महासभा के अधिवेशन (2011) को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था। 1980 के दशकांत में मुख्य धारा के अर्थशस्त्री इस बात से अनभिज्ञ प्रायः थे कि अर्थव्यवस्थाएं अंतरिक्ष के वितान में आयामहीन बिन्दु नहीं होती और अर्थव्यवस्था के स्थानिक आयाम उसकी आर्थिक शक्तियों के विषय में क्या बताते हैं।'' एक लेखः ''वृद्धिशील प्रतिफल और आर्थिक भूगोल'' तथा अपनी एक पुस्तक, ''विकास भूगोल एवं आर्थिक सिद्धांत में क्रुगमैन ने न केवल आर्थिक विश्लेषण में स्थान या वितान के महत्व की पुनः स्थापना की है बल्कि इसे नई दिशाएं भी प्रदान की है। अपनी ''भूगोल और व्यापार'' (1991) नामक पुस्तक में उन्होंने वृद्धिमान पैमाने के प्रतिफलों से जन्य तुलनात्मक लाभ के स्वरूप और महत्व पर पुनः आग्रह किया है। उन्होंने इसका कारण कुछ देशों और उनके उद्योगों के स्थानिकता संबंधी कारकों के आधार पर एकाधिकारी प्रतियोगिता के लाभ को माना है।

उद्योगों को लगाने के स्थान के बारे में निर्णय और उसके भौगोलिक वितान को श्रम विभाजन से जोड़ने का विचार इन दो कारकों के आधार पर अधिक स्वीकार्य हुआ

हैः (i) उत्पादन की लागत में वृद्धि तथा (ii) विकसित पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं से लाभ की दरों में कमी की सूचनाएं। विकसित पूंजीवादी देशों में अधिकांश विनिर्माण कार्यों में उत्पादित वृद्धि में कमी आने लगी थी। लीपिट्ज (1992) के अनुसार 1980 और 1990 के दशकों में नए अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन की संकल्पना चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय बन रहा था। (i) वैश्विक दक्षिण तथा (ii) विकसित पूंजी वादी देशों के आन्तरिक कारणों (श्रमिक अशांति, ह्रासमान प्रति प्राप्ति दर) के कारण यह समझा जा रहा था कि अब उद्योग व्यापार संकुलन का स्वरूप अवश्व परिवर्तित होगा। पूरे वैश्विक दक्षिण में दी जा रही संप्रेरणाओं और नई फर्मों द्वारा इन देशों में पर्यावरणीय संकटों की रचना के माध्यम से सहज सृजित बाह्यताओं ने नवीन भौगोलिकताओं की रचना कर दी। इनका अध्ययन संवृद्धि दर, जीडीपी, वाणिज्य और व्यापार के दायरों से बाहर निकलकर करने की आवश्यकता को पहचाना जा रहा था।

भारत में 1951 से 2020 की अवधि में घरेलू उत्पाद की औसत वार्षिक वृद्धि 4.6 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि 2.4 प्रतिशत रही है। किन्तु इन संवृद्धि गाथाओं में महत्वपूर्ण अंतक्षेत्रिक एवं अंतर्राज्यी अन्तर रहे हैं। कृषि में न्यून वृद्धि दर (2.6) का अर्थ रहा कि लगभग 2 तिहाई कृषि निर्भर जनसंख्या उपलब्धि में पिछड़ती गई जबकि अर्थव्यवस्था के अन्य कार्यक्षेत्रों में लगे व्यक्ति लाभान्वित होते रहे। निरंतर पोषण की त्रुटि और परिणाम स्वरूप उच्च भरणशीलता के स्वरूप का अर्थ था सामाजिक विकास की त्रुटियाँ।

बैनर्जी और पिकेट्टी (2005) ने उच्च अर्जक वर्ग के एक छोटे से अंश के आयकर के आंकड़ों का प्रयोग कर आय की विषमता में निरंतर वृद्धि को स्पष्ट किया है। अन्य लेखकों ने वैकल्पित आंकड़ों का प्रयोग (जैसेकि NFHS, IHDS और NSSO) उद्योगों और ऊपरी संरचनाओं जैसे विकास कार्यों के स्थानिक संकुलन के अध्ययन के लिए किया है। विकास के स्थूल क्षेम परिणामों में सुधार पूर्व चर्चित भौगोलिक संकुलन के विचार की पुष्टि कर रहे हैं। परिणाम स्वरूप भारत में ही कुछ क्षेत्रों में अभावग्रस्तता में वृद्धि हुई है। प्रत्येक पैमाने पर (सूक्ष्म, मध्यम एवं बृहतर) सभी भौगोलिक इकाइयों में विषमता में वृद्धि इस प्रकार के अध्ययनों द्वारा प्रमाणित हुई है। इन्होंने भारत के राज्यों को, वर्ग विभाजित किया है। ये विकास के स्वरूप, पुनःवितरण की प्रक्रिया और उने परिणामों में विभिन्नताओं में अंतदृष्टियां प्रदान कर रही है। अतः प्रत्येक युग या काल में विकास में विभन्नताएं एक वास्तविकता है और इसीलिए (i) विकास के स्वरूप तथा प्रवृत्तियों, (ii) पुनःवितरण के स्वरूप और (iii) क्षेम सुनिश्चित करने में सरकार की भूमिका का अध्ययन करते समय स्थानिक वितान को भी शामिल करने की नितांत आवश्यकता है।

बोध प्रश्न –3

1) क्या यह 'स्थापना' की जा रही है कि संसधनों, प्रौद्योगिकी और संस्कृति के अभाव की एक पूर्वशर्त अल्पविकास है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) विकास साहित्य में स्थान वितान की उपमाओं का प्रयोग क्यों किया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) ''भूगोल के अर्थशास्त्र'' के अध्ययन में पॉल क्रुग्मैन को किस बात का श्रेय दिया जाता है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) स्थानिकता आधारित विषमता पर अध्ययनों ने किस प्रकार से विकास नीति प्रक्रियाओं में सहायता की है?

.....

.....

.....

.....

.....

20.5 सारांश

आर्थिक विकास और अल्पविकास आर्थिक गतिविधियों के स्थानिक वितान में असमान वितरण को दर्शाने वाले शब्द हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए वर्तमान इकाई ये व्याख्याएं की हैं (प) विकास के विभिन्न आयाम, (पप) संबंधों के विभिन्न रूप तथा विकास में योगदान करने वाले कारक, (पपप) विकास की प्रक्रिया में अपरिहार्य स्थान वितान की विषमताओं का स्वरूप, और (पअ) उन विषमताओं को विश्व के विभिन्न भागों में किस प्रकार दोहराया जाता है। इस पृष्ठभूमि में इकाई में स्थान वितान के भूगोल के अध्ययन पर बल दिया है ताकि आर्थिक विकास की प्रक्रिया को विभिन्न क्षेत्रों के बीच कम विषमताकारी बनाया जा सके।

20.6 शब्दावली

तीसरे विश्व के देश : इन सांझी विशेताओं वाले देशः (i) राजनीतिक उद्‌गम, (ii) उपनिवेशवाद विरोधी उद्देश्य तथा (iii) बड़े स्तर पर गरीबी

भौगोलिकता का अन्त : वैश्वीकरण से जुड़े शब्द, जिनका आश देशों के बीच सीमा रेखाओं के विलोपन से है।

स्थान वितानिक बोध : हार्वे द्वारा गढ़ी गई उक्ति कि जो कुछ नव प्रवर्तन एवं राष्ट्रीय आर्थिक संवृद्धि का चलन करता वही उसे अनिवार्य रूप से स्थान वितान से जुड़ा स्वरूप भी प्रदान कर देता है।

20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) John, S. Saul (2006). Development after Globalization: Theory and Practice for the Embattled South in a New Imperial Age. Zed Books.

2) Jonathan Crush (1995) Imagining Development. Routledge.

3) Paul Krugman (1991) Geography and Trade.

4) Krugman, P. (1998). What is New About the New Economic Geography, Oxford Review of Economic Policy, Vol. 14, No. 2, pp. 7-17.

5) Harvey, David (2006). Spaces of Global Capitalism: Towards a Theory of Uneven Geographical Development, Verso Press.

6) Neil Smith (1990) Uneven Development: Nature, capital and the Production of Space. University of Chicago Press.

20.9 बोध प्रश्नों के लिए उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न –1

1) (i) योग्यता क्षमताएँ, (ii) परिसंपदाए (भौतिक तथा सामाजिक) और (iii) गतिविधियां

2) कारण यही है कि विकास इस प्रकार के अनेक कारकों पर निर्भर करता हैः (i) प्रौद्योगिकी का स्तर, (ii) संसाधनों की उपलब्धता, (iii) सरकार की अंतक्रियाएं (iv) नागरिक समाज (v) बाह्य एवं आंतरिक संगठन आदि।

3) इसका आशय अधिक शक्तिशाली देशों द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग अल्पविकसित देशों की परिभाषा के लिए किया जाता है। उन्होंने इसे इस प्रकार बताया हैः एक उपस्कर जिसके द्वारा तीसरे विश्व की जानकारी का अधिक विकसित देशों द्वारा अपनी शक्ति और हस्तक्षेप के प्रसार हेतु प्रयोग किया जाता है।

बोध प्रश्न –2

1) (i) शक्ति का अनुक्रम, (ii)देश में विद्यमान सामाजिक एवं राजनीतिक तार–तम्य, (iii) सरकार का स्वरूप, (iv) प्रशासन के आयाम आदि।

2) (i) शोषणात्मक प्रयोग और (ii) परिणामतः उत्पन्न पारिस्थितिकीय उथल पुथल, जो विभिन्न बड़े विकास कार्यों के साथ जुड़ी रही हैं।

3) उन्होंने एक क्षेत्र की ऐसे ऐतिहासिक रूप से उभरें, साथ लगते हुए क्षेत्रिक समाज के रूप में की है जिसमें ये विशेषताएं होंः (1) एक भौतिक पर्यावरण, (ii) एक समाजार्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश तथा (iii) अन्य क्षेत्रों एवं नगर एवं देश जैसी क्षेत्रकीय इकाईयों से पृथक स्थान वितान की संरचना।

बोध प्रश्न –3

1) नहीं। यह वस्तुतः इन कारणों से हुए पर– निर्भर विकास की प्रतिच्छाया ही है। जो देशों के बीच हुए (i) विषम लेन–देन तथा (ii) सृजित आर्थिक अतिरेक के अन्यत्र हस्तांतरण के कारण हुआ है।

2) इन कार्यों के लिए इसका प्रायः प्रयोग करते हैं: (i) विकास की परिभाषा तथा (ii) विभिन्न भौगोलिकताओं के बसे लोगों के साथ विकास के कारण क्या घटित होता है।

3) उन्हें विकास में भौगोलिकता के महत्व की पहचान कर उस पर आग्रह करने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने वृद्धिमान प्रतिफलों के कारा उत्पन्न तुलनात्मक लाभों के स्वरूप और महत्व पर भी प्रकाश डाला। इसका कारण उन्होंने कुछ देशों और उनके उद्योगों को प्राप्त हो गए। विनिर्माण क्षेत्र के एकाधिकारी प्रतिस्पर्धा लाा को माना यह उन्हें कुछ एक वस्तुओं में स्थानिकता के कारकों से सुलभ हुआ था।

4) इनके इन बातों पर ध्यान केन्द्रित करया है (i) विकास के प्रतिरूप और प्रवृत्तियाँ, (ii) पुनः वितरण का स्वरूप तथा (iii) क्षेम कल्याण सुनिश्चित करने में सरकारी हस्तक्षेप की संभावना ऐसे देशों ने अन्य देशों को विभिन्न वर्गों में बांटा है। इससे इन बातों में अंतदृष्टियों मिली हैं। (i) विकास के प्रतिरूपों में अन्तरों का स्वरूप तथा (ii) पुनः वितरण का स्वरूप और उसके परिणाम ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY